अनादि काल से चली आ रही भगवद्-विमुखता के दोष से अपने स्वरूप को न पहचान कर देह में आत्मबुद्धि रखने के कारण संसार-कूप में पतित जीव की अवस्था।

[प्रथम चित्र : स्वर्ग और नरक।
द्वितीय चित्र : अपवर्ग (मुक्ति)]

प्रथम चित्र का परिचय

एक व्यक्ति शिकार के लिये गहन वन में गया, तो अलक्षित रूप से एक कुए में गिर पड़ा, भीतर दोनों ओर के तृण-गुच्छों का सहारा लेकर बीच में ही लटका रहा। नीचे जल में सर्प और ऊपर एक बाघ उसे भक्षण करने की आशा में मुंह फाड़े हुए हैं। उधर जो तृण-गुच्छ उसकी जीवन-रक्षा के आश्रय हैं, उनकी जड़ों को भी एक श्वेत वर्ण का और एक काले रंग का चूहा काट रहा है। ऐसी भयानक अवस्था को समझ कर भी वह व्यक्ति उन तृण-पुष्पों से जो मधुबिन्दु (अर्थात् संसार के भोग्य विषय रूपी मधुचक्र से जो जड़ीय सुखरूपी मधुबिन्दु) झर रहे हैं, उनकी आस्वादन—मादकता में मत्त होकर ऐसी महा दुःखकर अवस्था को भी परम सुख मानकर निश्चिन्त है—नीचे, ऊपर दोनों ओर (नीचे का

Scanned with CamScanner

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका—टीका)

अनादि सिद्ध परतत्त्वज्ञान संसर्गाभाव का फल है अनादि बहिर्मुखता। (भक्तिसन्दर्भ, अनुच्छेद प्र०)

"भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्य्ययोऽ स्मृतिस्तन्मायया" इत्यादि (भागवत ११।२।३५)

ईश्वर-विमुखतावश जीव को ईश्वर की माया द्वारा अस्मृति होती है, अर्थात् उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता; इसी कारण विपर्यय होता है, अर्थात् वह मायारचित त्रिगुणात्मक पांच-भौतिक देह में आत्मबुद्धि रखता है। देह में आत्मबुद्धि वश देह-सम्बन्धी वस्तुओं में अभिनिवेश होता है, इससे भय उत्पन्न होता है।

कृष्ण भूलि सेइ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार दुःख॥
कभू स्वर्गे उठाय कभू नरके डुबाय।
दण्ड्य जने राजा जेन नदीते चुवाय॥

(श्री चै० च०)

श्रीकृष्ण-कृपा का एक प्रकार (रीति) यह है कि पूर्वोक्त ढंग से कृष्ण-विमुखता होने पर भगवान् के मङ्गल-विधान से माया निजोन्मुख (?) अतएव कृष्ण-बहिर्मुख उस जीव को त्रिताप-यंत्रणा आदि संसार-दुःख विशेष रूप से अनुभव कराती है और देती है। उस विशेषरूप का उदाहरण यह है: पूर्वकाल में अपराध के दण्ड विधान की एक यह रीति थी कि अपराधी को सुदीर्घ बाँस-खण्ड आदि के अग्रभाग से लटकाकर बाँधकर कुछेक बार नदी के जल में डुबोकर फिर उठाकर बार

Scanned with CamScanner

बार जलमग्न करते थे। निमज्जित अवस्था में श्वास बन्द होने से अपराधी को लगता कि अब प्राण निकले, पर ऊपर उठाये जाने पर सुख का अनुभव कर सोचता, अब बच गया। स्वर्ग-सुख और नरक-दुःख इसी प्रकार के हैं।

ब्रह्माण्ड है माया-गठित त्रिगुणमय और ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत देह एवं भोगविलास के उपकरण त्रिताप से भरे, ज्वाला से परिपूर्ण हैं। इसलिये जीव इस ब्रह्माण्ड में इन (रक्त, पीव, विष्ठा भण्डार, नश्वर व्याधिमन्दिर) देहों से इन भोगों को भोगकर सुख कहाँ पायेगा? महादुःख अथवा त्रिताप ही सुख का साज पहन कर जीव को सुख पहुँचायेगा कहकर उसे दुःख पर दुःख भोग करा रहा है।

महामाया देवी ने ईश-विमुख जीव को त्रिताप ज्वाला या क्लेश भोग कराने के लिये अपने त्रिगुण द्वारा यह संसार या चौदह भुवन रचे हैं। इन चौदह भुवनों के अन्तर्गत समस्त देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट आदि देह और भोगविलास की समस्त वस्तुएं महामाया के त्रिगुण से गठित हैं। "ब्रह्माण्डान्तर्गत चतुर्दश भुवनानि भोगायतनशरीराणि यावद् भोग्यवस्तुनि एतेषां कारणरूप पञ्चीकृतभूत-मात्रं भवन्ति।"

(वेदान्तसार)

केहो पापे केह पुन्ये करे विषयभोग।
भक्तिगन्ध नाहि जाते जाय भवरोग॥

(श्री चै० च०)

स्वर्ग सुख स्थायी नहीं है—"क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।" (गीता १।२१)

Scanned with CamScanner

पुण्यभोगों की परिसमाप्ति पर पुण्य-शीलगण देव-देह त्यागकर स्वर्गच्युत होकर मर्त्यलोक में आकर पुनः मनुष्य देह प्राप्त करते हैं; फिर पापाचारीगण स्थावर, पशु, कीट, जलचर आदि तिर्यग् योनियों के पर्यायक्रम से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर एक बार मनुष्य देह प्राप्त करते हैं। अतएव स्वर्ग-नरक गत दोनों प्रकार के जीव ही मनुष्य समाज में संमिश्रित हैं। उन्हें पहचानने के लिये शास्त्रों ने कुछ लक्षण बताये हैं—

"स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे।
दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणञ्च ॥"

स्वर्ग से आये व्यक्ति के चार चिन्ह हैं : दानशीलता, मधुर वाक्य, देवार्चन एवं ब्राह्मण-तर्पण अर्थात् (पूज्यव्यक्ति के प्रति सम्मान-प्रदर्शन) ब्राह्मण-भोजन।

"अत्यन्तरोषः कटुका च वाणी उच्चेऽरतिर्नीच-जनैः प्रसङ्गः।
कार्ये निवृत्तिः सुजनेषु निन्दा एतद्धि चिन्हं नरकागतस्य ॥"

नरक से आये व्यक्ति के चिह्न : अत्यन्त क्रोध, कटुभाषी, गुरुजनों के प्रति अश्रद्धावान्, नीचासक्त, सत्कार्य में विघ्नकारी एव सज्जन-निन्दुक। (गीता—अध्याय १६, दैवासुर-सम्पद्-विभाग योग में दोनों के लक्षण हैं।)

स्व-कर्म सूत्र में बद्ध जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते भगवान् की विशेष इच्छा से मनुष्य देह एक बार प्राप्त करता है। श्रीमद्भागवत=३।१५।२५ श्लोक की क्रमसन्दर्भ टीका में ब्रह्मवैवर्तपुराण-वाक्य, यथा—

Scanned with CamScanner

"अशीतिञ्च चतुश्चैव लक्षांस्तान् जीवजातिषु।
भ्रमद्भिः पुरुषैः प्राप्तं मानुषं विबुधेप्सितम् ॥
तदप्यफलतां यातं तेषामात्माभिमानिनाम्।
वराकानामनाश्रित्य गोविन्दचरणद्वयम् ॥"

अर्थात् चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते जीव एक बार देवताओं की इच्छित मनुष्य देह प्राप्त करता है। वह प्रसिद्ध मनुष्य जन्म भी आत्माभिमानी क्षुद्र लोगों द्वारा श्रीगोविन्दचरणद्वय का आश्रय न करने के कारण अफलद या व्यर्थ हो जाता है। 'मानुषं' इस पद में और 'तत्' इस शब्द में एक वचन होने से यही बात जानी जाती है कि चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते मात्र एक बार ही मनुष्य जन्म मिलता है।

श्रीविष्णुपुराण और गरुड़ पुराण में वर्णित है—"चतुर्लक्षाणि मानुषाः", किन्तु प्रमाणशिरोमणि श्रीभागवत-ग्यारहवें स्कन्ध में "नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं" इत्यादि श्लोक में श्रीगोविन्द की उक्ति से ही मनुष्यदेह सुलभ बताकर पुनः सुदुर्लभ कहती है, आनुक्रमिक चतुर्लक्ष बार मानव-देह धारण सम्भव नहीं है। इस विषय में भा० ३।२८।३८ श्लोक की टीका में वर्णित दैव शब्द से स्पष्ट है कि पूर्व संस्कार वश जीव को देह से देहान्तर प्राप्त होता है, दैव ही देहान्तर प्राप्ति का कारण है; नर देह प्राप्त करने से ही उसको चार लाख देह नहीं हो सकतीं। प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही देह मिलती है।

भगवान् श्रीरामचन्द्र ने अयोध्या पुरवासी मुनि सज्जन वृन्दों की सभा में कहा है—

Scanned with CamScanner

"आकर चार लाख चौरासी।
योनि भ्रमत यह जीव अविनाशी॥
फिरत सदा माया के प्रेरे।
काल-कर्म-स्वभाव गुण घेरे॥
कबहुँक करि करुणा नर देही।
देत ईश बिनु हेतु सनेही॥"
(तुलसीकृत रामायण)

आकर चार हैं—१. अण्डज, २. जरायुज, ३. स्वेदज, ४. उद्भिज्ज।

चौरासी लाख योनियाँ, यथा—

"बीस लाख स्थावर सब जानो। नौ लाख सब जलचर मानो।
ग्यारह लाख कूर्म कवि गाये। पक्षिगण दस लाख बताये।
तीस लाख पशु जानहु भाई। चार लाख वानर सुखदाई॥
जब यह चौरासी घट जावे। तब मानुष को तन कहुँ पावे॥"

"स्थावरा विंशलक्षाणि जलजा नवलक्षकाः।
कृमिजा रुद्रसंख्यानि दशलक्षाणि पक्षिणः॥
पशुस्त्रिंशतिलक्षाणि चतुर्लक्षाणि वानराः॥"

मतान्तर से—

"स्थावरा विंशलक्षञ्च जलजा नवलक्षकाः।
कृमिजा रुद्रलक्षञ्च पञ्चलक्षञ्च वानराः॥
पशुजा नवलक्षञ्च त्रिंशतलक्षञ्च पक्षिणः॥"

तत्पश्चात् मानव जन्म (भ. स. धृत शास्त्रवाक्यम्)।

Scanned with CamScanner

पशु से मनुष्य की भिन्नता—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मस्तु तेषां कथितो विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

अर्थात् आहार, निद्रा, भय, मैथुन—ये बातें पशु और मनुष्य दोनों में समान हैं; विशिष्टता एकमात्र धर्म को लेकर है। धर्महीन मनुष्य पशुतुल्य है।

मनुष्य-मनुष्य में भेद—

मनुष्य मनुष्य का भेद एकमात्र हृदयवत्ता या सहृदयता को लेकर है; विद्या, बुद्धि, पांडित्य-प्रतिभा, रूप-कुल, धन-सम्पत्ति और अर्थ आदि द्वारा नहीं। जो जितने सहृदय अर्थात् परदुःख में दुःखी और पर-सुख में सुखी हैं, वे उतने ही बड़े हैं।

कसौटी पर घिसने से जैसे सोना पहचाना जाता है, स्वार्थ के साथ घिसने से वैसे ही मनुष्य पहचाना जाता है।

"सन्त हृदय नवनीत समाना।
कह कोविद पर कहे न जाना॥
निज परिताप गले नवनीता।
पर परिताप सन्त सुपुनीता॥"
(रामायण)

न्याय-मीमांसादि शास्त्रों में पाण्डित्य होने पर भी मनुष्य भक्तिहीन अवस्था में पशुतुल्य हैं; तदनुगत व्यक्ति भी वैसे ही होते हैं। (श्रीभागवत ३।२१।१६ सारार्थदर्शिनी टीका)

Scanned with CamScanner

धर्म की संज्ञा—

"वेद-प्रणिहितोधर्मोह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।"

वेदविहित आचरण ही धर्म है, उसका विपर्यय ही अधर्म है। वस्तुतः वर्णाश्रमधर्म, याग, यज्ञ, स्वाध्याय, तपस्या, संयम, नियम एवं व्रतादि धर्म के प्रकृत स्वरूप नहीं हैं, धर्म-साधन के एक-एक उपायमात्र हैं। इसी लिये शास्त्रों ने भगवद्भक्ति को ही परम धर्म कहा है। यथा—श्रीमद्भागवत, श्लोक १।२।५:

"स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥" इत्यादि

जिस धर्म से भगवान् श्रीकृष्ण में अहैतुकी, फलाभि-सन्धान रहिता (निष्काम), सभी प्रकार के विघ्नों द्वारा अनभिभूता (अविचल) भक्ति का उदय हो, वही जीव का परम धर्म है। इस प्रकार की भक्ति से ही आत्म प्रसाद अनुभव होता है। आत्म प्रसाद—"सर्व दुर्विषयवैमुख्यापादक भगवद् रूपगुण माधुर्यानुभव ज्ञानमय।"

"विष्णुभक्ति विहीनानां श्रौताः स्मार्ताश्च याः क्रियाः।
कायक्लेशः फलं तासां स्वैरिणी व्यभिचारवत् ॥"

श्रुति-स्मृति विहित क्रियायें यदि हरिभक्ति के सम्बन्ध को छोड़कर अनुष्ठित होती हैं, तो उन सब धर्मानुष्ठानों का फल क्लेश-भोग मात्र ही होता है। वह कुलटा रमणी के व्यभिचार के समान ही दोष पूर्ण है।

"चारिवर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वधर्म करियाओ रौरवे पड़ि मजे ॥" (श्रीचै० च०)

Scanned with CamScanner

"भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रे जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥"

प्राणहीन देह को अलंकारों से सज्जित करने पर जिस प्रकार लोक रंजकत्व होता है, उसी प्रकार भगवद्भक्ति हीन व्यक्ति का उच्चकुल में जन्म लेना, उच्चपद पर अधिष्ठित होना, शास्त्र-अध्ययन करना, जप-तपस्यादि करना भी लोक रंजकत्व (बाह्य दृष्टि से सुन्दर) बनता है।

'नरतनु भजनेर मूल' (श्रीपाद नरोत्तम ठाकुर)

अज्ञान-मूढ़ता के कारण पशु आदि तिर्यग् देह एवं ज्ञान सम्पन्न होने पर भी भोगप्रवणता के कारण विषय-वैराग्य के अभाव में देव देह भजन-साधन के लिये उपयोगी नहीं होती। केवल मात्र मनुष्य देह ही उपयोगी है। इसीलिये मानवदेह को सुदुर्लभ कहा जाता है।

"बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुलभ सद ग्रन्थन गावा॥"
(तुलसी कृत रामायण)

उसमें भी भारतवर्ष में मानव देह प्राप्त करना अति दुर्लभ है। तभी सृष्टिकर्ता ब्रह्मा प्रार्थना करते हैं—"हा हन्त भारतभूमौ कदा नृजनुषो भूत्वा वयं कृष्णं भजन्तः क्षणमात्रेणैव वैकुण्ठं प्राप्नुयामेति।" (श्रीमद्भागवत ३।१५।२४ सारार्थ दर्शिनी टीका)

अर्थात् 'हाय हाय! हम लोग भी वांछा करते हैं, कब भारतभूमि पर मनुष्य-जन्म लेकर क्षणभर श्रीकृष्णभजन

Scanned with CamScanner

कर वैकुण्ठ जायेंगे ।' (भारतवर्ष की विशिष्टता श्रीभागवत ५।१९।२०-२१ एवं श्रीबृहद् भागवतामृत द्वितीय खण्ड में गोप-कुमार-प्रसङ्ग में)।

मनुष्य में साधन-भजन द्वारा भगवान् को प्राप्त करने की जैसी योग्यता है, पापकर्म द्वारा नरक में जाने की भी वैसी योग्यता है, फिर उसमें शुभ कर्मों से स्वर्ग-सुख प्राप्त करने की भी वही योग्यता है—इस दृष्टि से शास्त्रों ने मनुष्य देह को स्वर्ग, नरक, अपवर्ग का चिन्ह बताया है। यहाँ 'अपवर्ग' का अर्थ भगवान् की अहैतुकी भक्ति है, भक्ति-विघातक मोक्ष नहीं। (भा० ७।१३।२१ सारार्थ-दर्शिनी टीका)।

भगवन्माया-विमोहित एवं भगवत् प्रसंग में रुचिहीन देवताओं की अनर्गल भोग-स्पृहा इतनी प्रबल है कि ये लोग सूक्ष्म अंश में (सृष्टि कार्य विधान में इन्द्रिय अधिष्ठाता रूप में) मानव देह में रहकर सर्वदा विषयभोगों में तत्पर रहते हैं और भगवद्भक्तों को नाना विघ्न दिखाकर भजनपथ से निवृत्त करने की चेष्टा करते हैं। यथा—

"इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देख विषय बयारी। ते हठि देइ कपाट उघारी ॥
इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। विषय-भोग पर प्रीति सदाई ॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी।" (तुलसी कृत रामायण-ज्ञानदीपक)

"त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः
स्वौको विलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते।

नान्यस्त्व वर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥"

(भा० ११।४।१०)

हे प्रभो ! आपके सेवक देवस्थान स्वर्ग का अतिक्रम कर आपके परमपद पर पहुँचते हैं, अतएव उसमें सुरकृत विघ्न रहेगा ही। जो देवताओं के उद्देश्य से कुश पर पवित्र पुरोडासादि (आहुति) दान करते हैं, उनके लिये वह विघ्न नहीं रहता। पर आप जिनके रक्षक हैं, वे भक्तजन समस्त विघ्नों के मस्तक पर पदाघात करते हैं।

न वेत्यसौ भागवतं प्रभावं यदङ्घ्रिजा रेणुकणाः स्मरन्तः।
रक्षः पिशाचग्रहभूतरोगान् वज्रोपमान् दिक्षु विलाप्य यान्ति ॥

(श्रीहरिभक्ति सुधोदय १३।१२)

पृथ्वी देवी कहती हैं—हे वत्स प्रह्लाद ! तुम्हारे पिता निश्चय ही भगवद्भक्त की महिमा नहीं जानते। देखो, मनुष्य हरिभक्तों की पदधूलि की एक कणिका मात्र का स्मरण कर वज्रतुल्य कठिन काय राक्षस, पिशाच, ग्रह, भूत एवं व्याधि आदि को नाना दिशाओं में खदेड़ कर चलते रहते हैं।

"किवा से करिते पारे, काम-क्रोध साधकेरे,
यदि हय साधुजनार सङ्ग।"

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

विषयों के उपभोग से वासनाओं का उपशम नहीं होता; अग्नि में घृताहुति की तरह वृद्धि ही होती है। (भा० ९।१९।१४)

भगवन्माधुर्य एवं सेवारस के आस्वादन के बिना भोग-

Scanned with CamScanner

वासना उन्मूलित नहीं होती । (भा० ३।११।२० सारार्थ दर्शिनी टीका)

"श्रीभगवान् तावत् असाधारण-स्वरूपैश्वर्य-माधुर्यतत्त्व विशेषः ।" (भा० १०।१२।२१ लघुतोषणी टीका)

अर्थात् असाधारण स्वरूप-ऐश्वर्य-माधुर्यमय तत्त्व विशेष को भगवान् कहा जाता है ।

निर्विशेष ज्ञान से शुद्ध स्वरूप का, सम्भ्रम गौरव युक्त ज्ञान से ऐश्वर्य स्वरूप का और शुद्ध प्रीतिमय ज्ञान से माधुर्य स्वरूप का अनुभव होता है । (वही)

माधुर्यइ भगवत्तार सार । (श्रीचै. च. मध्य)

'जगत् व्यापक हरि,अजभव आज्ञाकारी,मधुर मूरति लीलाकथा
(स्वरूपांश) (ऐश्वर्यांश) (माधुर्यांश)
एइ तत्त्व जग्ने जेइ, परम उत्तम सेइ, तार संग करिह सर्वथा ।।'

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

जैसे राजा राजनीति (कानून) के रूप में राज्यभर में घर-घर में प्रत्येक नागरिक के हृदय में अवस्थान करता है, सविशेष रूप से राजदरबार में मत्री आदि परिजनों सहित राजोचित वेश में अवस्थान करता हुआ राज्य के समस्त कार्य यथाविधि सम्पादन करता है, फिर यथासमय राजपरिच्छद आदि त्यागकर निश्चिन्त हो कर विश्राम के लिये साधारण वेश में महल में प्रवेश कर अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि के साथ मिलकर परम शान्ति प्राप्त करता है; वैसे ही अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अङ्गकान्ति

Scanned with CamScanner

निर्विशेष ब्रह्म अर्थात् चिन्मात्र सत्तारूप में 'बाह्यावास' अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में एवं प्रत्येक जीव के हृदय में अपने अंश वैभव अन्तर्यामी परमात्मारूप में अवस्थान करते हैं (यह स्वरूप तत्त्व है)। फिर वे 'मध्यमावास'—'ऐश्वर्यमय धाम वैकुण्ठ में अपनी विलासमूर्ति शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज श्री-नारायण रूप में सपरिवार अवस्थान करते हुए आश्रित सेवक वृन्दों का लालन, दुष्टों का दमन, विधिधर्म मर्यादा-संरक्षण आदि समस्त कार्य सम्पादन करते हैं (यह ऐश्वर्य तत्त्व है)। फिर वे स्वयं रूप में भय–सम्भ्रमादि सूचक चक्र–गदादि अस्त्रों का संगोपन कर सर्वचित्ताकर्षक, द्विभुज, मुरलीधर गोपवेश श्रीनन्द-नन्दन रूप में शुद्ध माधुर्यमय 'अन्तःपुर' श्रीवृन्दावन में अवस्थान करते हुए निज अन्तरङ्ग प्रिय माता-पिता, सखा, प्रेयसी आदि को नित्य नव–नव सुख-सिन्धु में निमज्जित कर स्वयं सुखस्वरूप होकर भी सुखास्वादन में विभोर हैं (यह माधुर्य तत्त्व है)।

"निज सम सखासंगे, गोगन-चारण रंगे,
वृन्दावने स्वच्छन्द विहार।
जाँर वेणु ध्वनि, स्थावर–जंगम-प्राणी,
पुलक-कम्प बहे अश्रु धार॥"
(श्रीचै० च० मध्य. २१ वाँ परि.)

"अविचिन्तैश्वर्ये श्रीकृष्णे एकक्षणे स्थलत्रयवर्तित्वं नासम्भवम्"—
श्रीपाद विश्वनाथ।

अर्थात् अचिन्त्यशक्ति युक्त श्रीकृष्ण एक समय ही तीन स्थानों में रह सकते हैं, उनके लिये यह कुछ भी असम्भव नहीं।

Scanned with CamScanner

भक्ति के त्रिविध भेद : (१)सर्वभूतों में परमात्मा रूप में श्रीहरि का भजन करना—मोक्षाभिसन्धिनी भक्ति (शान्तभाव के भक्त)। स्वरूप की उपासना।

(२) आत्मत्राण की कामना से ईश्वरज्ञान सम्पन्न होकर भगवान् का भजन करना—विधिभक्ति (दास्यभाव के भक्त) ऐश्वर्य की उपासना।

(३) ईश्वर बुद्धि न रखकर सद्बन्धु बुद्धि से, अर्थात् सम्भ्रम—गौरव आदि हृत्कम्पों से रहित चित्त से, लोभ-अभिभूत होकर परम सुन्दर भगवान् श्रीनन्दनन्दन के श्रीचरण-कमलों में प्रेमसेवा प्राप्त करने के लिये भजन करना (लीलादि-श्रवण, कीर्तन, स्मरण)—रागभक्ति। (सख्य, वात्सल्य और मधुरभाव के भक्त)। माधुर्य की उपासना। (भा० २।१।५ सारार्थदर्शिनी टीका)

पाप या अधर्म के त्रिविध भेद :

"प्रमादेन तत्करणात्तमसोऽल्पत्वं मोहेन मध्यमत्वं नास्तिकतायां तु पूर्णत्वं ज्ञेयम्॥"

(भा० ५।२६।३ क्रमसन्दर्भ टीका)

प्रमाद में पाप का अल्पत्व, मोह में पाप का मध्यमत्व और नास्तिकता में पाप का पूर्णत्व होता है। नास्तिकता के बराबर पाप जगत में नहीं है।

आत्मतत्व विषयों में दृष्टिहीन गृहस्थों की वृथा ही आयुक्षय होती हैं, जीवनभर रात्रि निद्रा अथवा रतिक्रीड़ा में और दिन अर्थ चिन्ता अथवा परिवार—प्रतिपालन में बीतते हैं।

Scanned with CamScanner

वे अपने-अपने पिता—पितामह आदि के दृष्टान्तों से देखते हैं कि देह-स्त्री-पुत्रादि एवं अपना राज्य, सैन्य-सामन्त सभी नश्वर, अनित्य है। फिर भी आसक्तिमद में मत्त होकर उन लोगों की नश्वरता देखकर भी नहीं देखते। (भा० २।१। ३-४ श्लोकार्थ)

ये लोग बालक पुत्र और पिता को जलाकर आते हैं और अति तुच्छ विषयसुख-भोगों के लिये पाप विषयों का चिन्तन करते हैं तथा पुत्र-पिता द्वारा छोड़े धन से सुख पूर्वक जीवित रहने की इच्छा करते हैं। अहो! भगवन्माया का कैसा प्रभाव है! (भा० ५।१८।३ श्लोकार्थ)

अथवा—अहो, मेरे माता-पिता वृद्ध हैं, पत्नी शिशु-सन्तानवती है, मेरे बिना मेरे पुत्र अनाथ है, अतएव वे सब उस दुःख से कैसे बचेंगे? इस प्रकार घर-गृहस्थ की कामनाओं से विक्षिप्त हृदय मूढ़मति मनुष्य इन सब विषयों का चिन्तन करते-करते मर जाता है और अत्यन्त तामस योनि प्राप्त करता है। (भा० ११।१७।५७-५८ श्लोकार्थ)

श्रीचैतन्यभागवत में—

"कृष्णनाम भक्तिशून्य सकल संसार।
प्रथम कलिते हैल भविष्य-आचार॥
धर्म कर्म लोक सब एइ मात्र जाने।
मङ्गल चण्डीर गीते करे जागरणे॥
दम्भ करि विषहरि पूजे कोन जन।
पुत्तली पूजये केह दिया बहु धन॥
धन नष्ट करे पुत्र-कन्यार बिभाय।

Scanned with CamScanner

एइमत जगतेर व्यर्थ काल जाय ।।
ना बाखाने युगधर्म कृष्णेर कीर्तन ।
दोष बिना गुण कारो ना करे कथन ।।
सकल संसार मत्त व्यवहाररसे ।
कृष्णपूजा कृष्णभक्ति कारो नाहि बासे ।।
निरवधि नृत्य गीत वाद्य कोलाहल ।
ना शुनि कृष्णेर नाम परम मङ्गल ।।
केन वा कृष्णेर नृत्य केन वा कोतन ।
कारे वा वैष्णव बलि किवा संकीर्तन ।।
किछु नाहि जाने लोक धन-पुत्र आशे ।
सकल पाषण्ड मिलि वैष्णवेरे हासे ।।
जगत् प्रमत्त धन-पुत्र-विद्यारसे ।
देखिले वैष्णव मात्र सबे उपहासे ।।
मृदङ्ग-मन्दिरा-शङ्ख आछे सर्व घरे ।
दुर्गोत्सवकाले वाद्य बाजावार तरे ।।
देवता जानेन सबे षष्ठी विषहरि ।
तादेर सेवेन सबे महा दम्भ करि ।।
धन वंश बाड़ुक करिया काम्य मने ।
मद्य-मांसे दानव पूजये कोन जने ।।
योगीपाल भोगीपाल महीपालेर गीत ।
इहा शुनिवारे सर्व लोक आनन्दित ।।"

शास्त्रों ने कृष्ण-भक्ति हीन लोगों को जीवन्मृत कहा है। मृत व्यक्ति के दाहस्थान को कहते हैं श्मशान् ! जीवन्मृत व्यक्ति भी सर्वदा दुष्पूरणीय कामनाओं की अग्नि में दग्ध होता है, अतः उसका हृदय भी श्मशान-सदृश है।

Scanned with CamScanner

"विषये सकले मत्त, नाहि कृष्णनाम-तत्त्व,
भक्ति शून्य हइल अवनी।
कलिकाल-सर्प विषे, दग्ध जीव मिथ्या रसे,
नाहि जाने केवा से आपनि ॥
निज कन्या-पुत्रोत्सवे, धन व्यय करे सबे,
नाहि अन्य शुभकर्म लेश।
यक्ष पूजे मद्य-मांसे, नाना मते जीव हिंसे,
एइ मत हैल सर्व देश ॥
देखिया करुणा करि, कमलाक्ष नाम धरि,
अवतीर्ण हैला गौड़देशे।
व्रजराज कुमार, सांगोपांगे अवतार,
कराइब एइ अभिलाषे ॥
सर्व आगे आगुयान, जीवेरे करिते त्राण,
शान्तिपुरे करिला प्रकाश।
सकल दुष्कृति जाबे, सबे कृष्णप्रेम पावे,
कहे दीन वैष्णवेर दास ॥"

श्मशान में जीव-शिक्षा

"के भाइ तुमि घुमियेछो ?
गृह-अभिलाष परित्याग करि,
श्मशानेते आसि निश्चिन्त रयेछो।
संसार साजाते बाकि राख नाइ,
तार तो एखन किछु संगे आन नाइ,
केवल कलसी कुँचि माथा मुंड छाइ,
इहार जन्ये रे भाइ आजन्म खेटेछो ॥१॥

Scanned with CamScanner

नित्य मांसाहारी शृगाल कुक्कुरे,
तारा धरे तोमाय टानाटानि करे,
बुझि पूर्व ऋण तादेर शुधिवार तरे,
अकातरे निजेर मांस दितेछो ॥२॥
सुकोमल शैय्याय कामिनीर सने,
काटाइते काल आनन्दित मने,
एखन अङ्गार भरा कदर्य श्मशाने,
चितादाहेर काष्ठ सिथाने नियेछो ॥३॥
पुत्र परिवार तिल आध छेड़े,
थाकिते ना कभु नयनेर आड़े,
तबे केनोरे आज श्मशानेते पड़े,
तादेर सङ्गे कि भाइ अभिमान करेछो ॥४॥
अनिमेष नेत्रे कार पाने चेये,
स्वप्न शून्य निद्राय आछो घुमाइये,
तोमार घूमभांगान चिह्न पाइने खुँजिये,
काल घूमे रे भाइ निश्चिन्त रयेछो ॥५॥
स्वप्न शून्य निद्राय घुमाइते गेले,
संसारेर मोह जेते हय रे भूले,
नीलकण्ठ बले दाओना आमाय बले,
केमन करे बन्धन परित्याग करेछो ॥"६॥

"देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च ।
मातुः पितुर्वा क्रेतुर्वा बलिनोऽग्नेः शुनोऽपि ॥
एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाण्ययम् ।
को विद्वानात्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥"

(भा० १०।१०।११-१२)

Scanned with CamScanner

श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) से प्रकाशित

द्वितीय चित्र :

मानव देह की परिणति

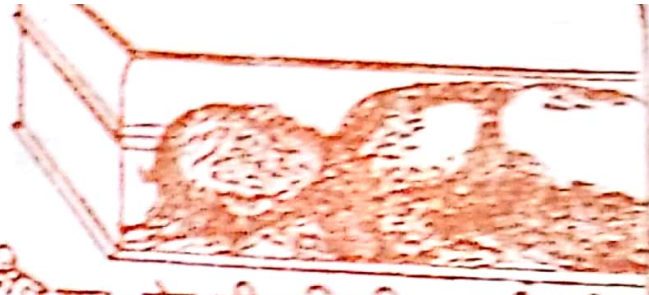

प्रतीकात्मक मृत-देह की परिणति—कृमि कीड़े

प्रिय बान्धवों द्वारा अंतिम क्रिया। चिता की अग्नि में दग्ध मृत देह-भस्म। मांसाहारियों का मन: क्षोभ।

Scanned with CamScanner

चित्र 1 : मानव देह की परिरचना — प्रारंभिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त मांसाहारियों की विद्या

(८/०८/०८ मंगल), 'हिंदुस्तान' हिंदी दैनिक, दिल्ली में प्रकाशित

तात्पर्य :—जो लोग इस नश्वर देह के परिपोषण के लिये पर पीड़न, पर हिंसादि पापकार्य करते हैं, वे क्या एक बार भी नहीं सोचते कि यह देह किसकी है ? इसका प्रकृत सत्त्वाधिकारी कौन है ? विचार करने पर देखने में आयेगा कि इस देह के बहुत-से सत्त्वाधिकारी हैं। फिर परिणाम से पता चलता है कि देह किसी की नहीं है, वे सब मिथ्या अभिमान ममता आदि छोड़कर अन्तर्हित हो गये हैं। जो अन्नादि देकर देह का पोषण करते हैं, वे सोचते हैं देह मेरी है। वे देह के प्रति ममता का दावा कर अपने कार्य में देह को नियोजित करने की चेष्टा करते हैं, पर देखने में आता है कि यथासमय यह देह उनके सारे दावे को अस्वीकार कर श्वास-प्रश्वास विहीन हो जाती है। पिता पुत्र की देह उत्पन्न करता है, माता पुत्र की देह गर्भ में धारण करती है और आत्मभुक्त अन्नपान आदि के रस से परिपुष्ट करती है। पितामह और मातामह प्रभृति जनक-जननी की देहों को उत्पादन और गर्भ में धारण करते हैं, अतः वे भी इस देह पर दावा करना चाहते हैं। कोई बल-पूर्वक किसी की देह लेकर अपने काम में उसे लगाकर उस देह पर अपने सत्त्व का दावा करना चाहता है। कोई मूल्य देकर देह को क्रयकर 'मेरा क्रीतदास' कह कर उस पर सत्त्व का दावा करता है। कभी देखने में आता है कि जिस पर किसी ने दावा किया था, वह देह मृत होकर अग्नि में दग्ध हो गई अथवा शृगाल-कुक्कुरादि के पेट में चली गई। इसलिये इतने साध की यह देह किसकी है, अर्थात् इस पर कितनों का दावा है. इस बात की गणना नहीं की जा सकती। एक-एक देह कितने लोगों के काम आती है या अधिकार में

Scanned with CamScanner

रहती है, उसे देखकर लगता है जैसे यह देह एक साधारण सम्पत्ति हैं। इस देह-सम्पत्ति को यदि वे सब दावेदार मिल-कर बाँट लें, तो प्रत्येक के हिस्से में कितनी-सी देह रहेगी, लगता इस बात पर किसी ने कभी विचार नहीं किया।

किसी अविभक्त साधारण सम्पत्ति पर यदि कोई केवल मात्र अपने सत्त्व का दावा करे या तदनुरूप व्यवहार करे, तो उसकी जो अवस्था होती है, वही अवस्था उसकी होती है, जो अनेकों की अविभक्त साधारण सम्पत्ति इस देह पर भी मात्र अपने सत्त्व का दावा करता है। साधारण सम्पत्ति को अपनी मानकर उसके उन्नति-साधन की चेष्टा करना और इस देह-सम्पत्ति को अपनी मानना मूर्खता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? मायिक देह की माया से ही सृष्टि है. माया में ही उसका लय है। यह माया के अतिरिक्त और किसी की नहीं है। माया के मोह में पड़कर इस मायिक देह को अपनी मानकर इसकी पुष्टि के लिये जो पर हिंसा, पर पीड़नादि पापकार्य करते हैं, उन-जैसा अज्ञ त्रिजगत् में और कोई नहीं है। माया की देह एक दिन माया में लीन हो जाती है, देह धारी को पापों के फलस्वरूप निदारुण नरकादि यंत्रणा ही हाथ लगती है। अतएव इस नश्वर तुच्छ देह के प्रति आसक्त होकर देह-पोषण के लिये पापकार्य न कर साधन-नौका इस देह से भगवद्भजन कर नित्य और शाश्वत आनन्द का अनुसन्धान करना हो बुद्धिमान् व्यक्ति का कर्तव्य है।

श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध में इस संसार का अटवी (अरण्य) रूप में वर्णन किया गया है, साथ ही इसका दु.ख-दायकत्व स्वभाव दिखाया गया है। यथा—

Scanned with CamScanner

श्रील जड़भरत महाशय श्रीरहूगण से बोले—"हे राजन्! जैसे वणिक् समूह अर्थोपार्जन की इच्छा से चारों ओर भ्रमण करता-करता एक दुर्गम वन में जा पहुँचता है और वहाँ अर्थ न पाकर अनर्थ ही प्राप्त करता है, वैसे ही मायामुग्ध जीव (मानव जाति) दुस्तर प्रवृत्तिमार्ग में रजोगुण तमोगुण और सत्त्वगुण में विभक्त कर्मों को देखकर सुख पाने की आशा में उन कर्मों को अपना कर्म मानकर अनुष्ठित करता है, तो कर्मानुरूप फल भी प्राप्त करता है। सरल अर्थ यह है :— सत्त्वगुण द्वारा विभक्त शुभ (पुण्य) कर्म, तमोगुण से विभक्त अशुभ (पाप एवं अपराधरूपी) कर्म एवं रजोगुण से विभक्त शुभ-अशुभ-मिश्रित कर्म-इन त्रिविध कर्मों को करने से सुख प्राप्त होगा, इस बुद्धि से जड़ीय देह में आत्मा आरोपित कर देहात्मवादी मनुष्य उन सब कर्मों को करता रहता है। उन-उन कर्मों से विविध देहों (शुभ कर्मों से देव देह, अशुभ कर्मों से पशु-पक्षी आदि तिर्यक् देह एवं शुभ-अशुभ-मिश्रित कर्मों से मनुष्य-यक्ष-राक्षसादि देह) का निर्माण होने से तदनुसार देह प्राप्त कर उस देह से संयोग-वियोगादि जनित सुख-दुःख रूप अनादि संसार अनुभव करता रहता है। संसार में जो सुख प्राप्त होता है, उसका परिणाम ही केवल दुःख है, अतएव विष्णुमाया के वशीभूत यह जीव अपनी-अपनी देह द्वारा निष्पादित कर्मों का अनुभव कर अत्यन्त अमङ्गल स्वरूप संसार–अरण्य पाकर परिभ्रमण कर रहा है। सुख के लिये बहुत चेष्टा करता है, पर वह प्रायः फलवती नहीं होती, विघ्न आते रहते हैं;फिर भी मनुष्य आज भी सद्गुरु रूपी श्री-हरि के चरणारविन्दोंमें मधुकर बनना नहीं चाहता। अर्थात् जो

Scanned with CamScanner

गुरु शास्त्रज्ञ, समदर्शी और श्रवण-कीर्तनादि भजन परायण हैं, उनके श्रीचरणों का आश्रय लेने को मनुष्य इच्छा नहीं करता। कोई-कोई तो भेददर्शी, पर-निन्दुक, कामी, लोभी एवं अशास्त्रज्ञ असद् गुरु का पदाश्रय लेकर इस संसार-अटवी में परिभ्रमण भी करता रहता है। जिस व्यक्ति में पूर्वोक्त हरि-भक्ति के लक्षण नहीं हैं, उसे गुरु बनाने से भव-अटवी के चक्कर से छुटकारा नहीं मिलता ॥१॥

हे महाराज ! जैसे बन में दस्यु वणिकों के बड़े कष्ट से प्राप्त धन का अपहरण कर लेते हैं अथवा जो वणिक अपने साथियों को वश में नहीं करता, वे जैसे चोरों की तरह उस असावधान वणिक के बड़े कष्ट से मिले धन का वन में अपहरण कर लेते हैं, वैसे ही चक्षु, कर्ण, जिह्वा, नासिका, त्वक् एवं अन्तःकरण (मन और बुद्धि)—ये छह इन्द्रियाँ दस्तु तुल्य हैं। परकाल-हितार्थ परमधर्मस्वरूप भगवत् सेवोपयोगी मनुष्य (मानव-जाति) का जो ज्ञानरूप धन है, उक्त इन्द्रियाँ उस अजितेन्द्रिय ग्राम्य भोगों में आसक्तिमान् पुरुष के उस ज्ञान रूप धन का अपहरण कर लेती हैं। चक्षु ग्राम्य रूप दर्शन द्वारा, कर्ण ग्राम्य कथा श्रवण कर, जिह्वा ग्राम्य षड्रसों के आस्वादन से, नासिका ग्राम्य गन्धों का घ्राण लेकर, त्वक् ग्राम्यस्पर्श (स्त्री आदि के स्पर्श) द्वारा एवं अन्तःकरण की वृत्ति ग्राम्य उपभोग-विषयों का संकल्प कर निश्चय कर यह अपहरण कार्य करते हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य देह में जो ज्ञान है, वह भगवत् तत्त्व की उपलब्धि का द्वार-स्वरूप है; वह अजितेन्द्रिय व्यक्ति के हृदय में विकसित नहीं होता, संकुचित होकर नष्ट प्राय हो जाता है ॥२॥

Scanned with CamScanner

हे राजन्! और भी सुनिये। वन में वणिकों के संरक्षित मेष-शावकों को शृगाल, भेड़िये आदि देखते-देखते हर ले जाते हैं। उसी प्रकार इस संसार-अटवी में स्त्री-पुत्रादि कार्यतः शृगाल-स्वरूप हैं। इस कंजूस व्यक्ति के संरक्षित परमार्थ-उपयोगी अन्न-वस्त्र, गुड़-घृतादि जो पदार्थ हैं, उन्हें वह स्त्री आदि को देने की इच्छा नहीं करता, फिर भी वे लोग 'हम तुम्हारे कुटम्बी हैं, तुम अवश्य ही हमारा पालन करने को बाध्य हो इस प्रकार सांसारिक नीति दिखाकर देखते-देखते उन सब पदार्थों का हरण कर लेते हैं ॥३॥

हे महाराज! जंगल में भूरि-भूरि तृण-गुल्मादि से आच्छादित गड्ढे हैं, गुफायें हैं; वहाँ वणिक् समूह प्रेम पूर्वक ठहरता है और डांस, मच्छर, शलभ (टिड्डे, पतंगे), शकुन्त (पक्षी विशेष), चूहों आदि से उत्पीड़ित होता रहता है। उसी प्रकार इस ससार-अरण्य में गृहस्थाश्रम गह्वर-तुल्य है, तृण-गुल्मादि-जैसे काम कर्म आदि द्वारा आच्छन्न है। प्रति वर्ष खेत की जुताई करने पर भी वहाँ के तृणादि के बीज नष्ट नहीं होते, पुनः उग आते हैं; उसी प्रकार गृहाश्रम में कर्म पूरी तरह नष्ट नहीं होते, कारण-गृहाश्रम काम कर्मों की डिब्बी-जैसा है; डिब्बी में कपूर न भी रहे, उसका परिमल नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार गृहाश्रम में काम-कर्मों की वासना (कर्म जनित भोगवासना) या बीज के रहने से ही पुनः वैसे कर्म करने के लिये आदमी उन्मुख होता है। अतएव वैसा गृहस्थ डांस, मच्छर, शलमादि-जैसे धन हरणकारी दुर्जनों द्वारा अत्यन्त उत्पीड़ित होता रहता है ॥४॥

Scanned with CamScanner

वणिक् वर्ग उस दुर्गम वन में भ्रमण करते-करते कहीं-कहीं गन्धर्वपुर (गन्धर्व माया से नगर-रचना कर सकते हैं; पर वह वास्तविक नहीं होता। वैसा ही नगर) देख पाता है, तो उसे सत्य समझकर उसमें दीख रहे उपभोग्य पदार्थों में रत हो जाता है। उसी प्रकार मिथ्या ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति असत्य नरलोक को सत्य मान लेता है और जल बुद्धि से मृग तृष्णा के प्रति दौड़ते अज्ञ पथिक् की तरह मूढ़ व्यक्ति इस नर-लोक में कहीं-कहीं सुखमय खान-पान स्त्री-सङ्ग आदि मिथ्या विषयों को सुखद सत्य विषय मानकर उनकी ओर दौड़ पड़ते हैं ॥५—६॥

हे महाराज ! जैसे वणिक् लोग अरण्य में शीतातुर होकर अग्नि की इच्छा से ज्वलन्त अग्नि की तरह जलते इधर-उधर दौड़ते मशाल की आकार-वाले ग्रह विशेष को देखकर अर्थात् पिशाच को देखकर अग्नि बुद्धि से उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं पर उसे प्राप्त नहीं कर पाते; किसी प्रकार पा भी लें तो वह ग्रह उन्हें भक्षण कर लेता है; वैसे ही इस संसार में स्वर्ण तुल्य लोहित वर्ण जो रजोगुण है, उसमें जो व्यक्ति आविष्ट है, वह अग्नि विष्ठा सुवर्ण का अभिलाषी होकर दूसरे का सुवर्ण लेने के लिये इधर-उधर दौड़ा करता है। कहीं सुवर्ण मिल भी जाय, तो उससे उसकी नरक गति ही होती है, कारण—स्वर्णादि किसी भी परकीय द्रव्य का अपहरण करने से नरक प्राप्त होता है ॥७॥

हे राजन् ! जैसे वणिक् समाज जंगल में कहीं कहीं निवास स्थान, जल और धन देखकर 'वह मेरा है, वह मेरा है'

Scanned with CamScanner

ऐसा निश्चय कर उसकी ओर दौड़ता है, वैसे ही आदमी इस संसार में निवास स्थान, जल-धन आदि में अपना संरक्षकत्व स्थापित कर उसमें विभोर हो जाता है ॥८॥

जङ्गल में कहीं वे वणिक् चक्रवात के कारण उठी धूल से दिशाओं को नहीं देख पाते, क्योंकि उनके नेत्र भी उस धूल से भर जाते हैं। उस प्रकार इस संसार में चक्रवात स्वरूप प्रमदा (स्त्री) की गोद में धूलि के समान कामवेग कामान्ध पुरुष की दृष्टि आच्छन्न कर देता है, तब वन्हि, सूर्यादि दिग् देवता साक्षी होते हुए भी वह उन्हें नहीं देख पाता। वह, दिग् देवता के आगे स्त्री-सङ्ग नहीं करते इस निषेध को नहीं मानता। उसे दिग् देवता अदृश्य की तरह लगते हैं, अर्थात् वह समझता है कि इस समय कोई नहीं है; ऐसा सोचकर वह उनकी मर्यादा अतिक्रम करता है। वह कामवेगाधीन होकर साक्षी स्वरूप उन देवताओं को जानकर भी नहीं मानता, यही तात्पर्य है। धर्मपत्नी का सङ्ग भी विहित काल-स्थानादि में किया जाता है, अन्यथा दण्ड भोगना पड़ता है ॥९॥

प्यासे वणिक् अरण्य में कहीं-कहीं मरीचिका भ्रम से पुनः पुनः दौड़ते हैं, अर्थात् एक बार देख लेते हैं कि वह जल नहीं है, फिर भी दूसरी बार दूर से उस मरीचिका को देखकर जल-भ्रम से पुनः दौड़ पड़ते हैं। बार-बार दौड़कर भी जल नहीं पाते। उसी प्रकार इस जगत् में आदमी यह जानकर भी कि सभी विषय व्यर्थ हैं, देह में अभिनिवेश होने के कारण स्मृति भ्रष्ट होकर पहले अनुभव किये उन व्यर्थ विषयों की ओर पुनः दौड़ता है। विषयों की व्यर्थता पुनः पुनः अनुभव करके भी उनसे निवृत्त नहीं होता ॥१०॥

Scanned with CamScanner

वणिक् लोग वन में किसी-किसी स्थान पर कर्ण शूल स्वरूप उल्लू और झिल्ली (झींगुर) नामक कीट विशेष की ध्वनि सुनकर व्यथा पाते हैं। उसी प्रकार संसार में मनुष्य सम्पत्ति को लेकर कभी-कभी शत्रु और राज्य शासन के निकट प्रत्यक्ष या परोक्ष में कर्कश वाक्यों में भर्त्सना प्राप्त करता है, जो उसके कर्णों और हृदय में व्यथा पहुँचाती है ॥११॥

कभी-कभी वे वणिक् भूखे-प्यासे होकर बन में फल खाने के लिये विषतिन्दुक आदि कड़वे फल युक्त वृक्ष-लताओं का और जल पीने के लिये जहरीले कूए का आश्रय लेते हैं। उसी प्रकार इस संसार में क्षुधा-तृष्णा के निवारणार्थ कोई-कोई व्यक्ति पापी लोगों का सहारा लेता है। जो लोग अपुण्य (विषाक्त) वृक्षलताओं और विष-कूप की तरह दृष्टादृष्ट प्रयोजन शून्य धन को आश्रय मानकर मृत-तुल्य हो गये हैं, अर्थात् जो धन संचय कर विष्णु-वैष्णव और आतिथ्यादि सेवा में धन खर्च नहीं करते, वे सब जीवन्मृत हैं। अन्न और जल के लिये उन लोगों का आश्रय लेना ही पाप है—यह समझना चाहिये। इसलिये अधार्मिक व्यक्ति का अन्न-जल लेने वाले को भी पापी कहा जाता है। कभी-कभी आदमी मरीचिका जल-सदृश अदाता के पास भी भिक्षा के लिये पहुँचता है ॥१२॥

हे राजन्! कभी वे वणिक् जल शून्य नदी की ओर दौड़ते हैं और उसके गर्भ में गिर पड़ते हैं, उनके सिर फट जाते हैं; पीछे भी पतन-व्यथा अनुभव करते रहते हैं; पानी भी नहीं मिलता। उसी प्रकार इस संसार में कभी-कभी सुख की

Scanned with CamScanner

आशा में आदमी असत्संग कर बुद्धि भ्रष्ट हो जाता है, फल स्वरूप इह-काल परकाल में उसे केवल दुःख ही मिलता है ॥१३॥

हे महाराज ! वन में कभी-कभी वणिक् लोग निरन्न हो जाते हैं, तो अपने लोगों से अन्नादि प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, पर वह नहीं मिलता। इस संसार में भी मनुष्य निःस्व हो जाता है, तो दायादगण (पैतृक सम्पत्ति के हिस्से-दार; सम्बन्धी) से अन्न आदि की अभिलाषा रखता है, पर वह मिलता नहीं; कारण-उसकी परबाधन रूपी अपनी जीविका विद्यमान है, अर्थात् वह अपने पिता या पुत्र का एक दाना भी किसी के पास देखता है, तो उसे राजकर्मचारी द्वारा दण्ड दिलवाता है। ऐसे पर पीड़क को कोई अन्नादि देना नहीं चाहता ॥१४॥

कभी-कभी वे वणिक् दावाग्नि से सन्तप्त होकर विषन्न हो जाते हैं, कभी यक्षों द्वारा प्राण-सदृश धन के अपहरण कर लिये जाने से शोक ग्रस्त हो जाते हैं, कभी किसी बलिष्ठ व्यक्ति द्वारा हृत सर्वस्व होकर शोक करते-करते मूर्छित हो जाते हैं। उसी प्रकार इस संसार में मनुष्य दावानल-जैसे गृह में प्रिय वस्तु के विरह में सन्तप्त होता है, उत्तर काल में दुःख-शोकाग्नि में जलता है। कभी-कभी समय के फेर से राज्य शासन प्रति-कूल होकर प्रियतम प्राणसदृश धन का अपहरण कर लेता है, तो गृहस्थ विषन्न चित्त शोकाभिभूत होकर मृतक सा हो जाता है॥ १५-१६॥

हे राजन् ! कभी-कभी वणिक् लोग गन्धर्व-पुर

(मनोरथ रूपी नगर) में सुखी लोगों की तरह मुहूर्तभर के लिये आनन्द प्राप्त करते हैं। इस संसार में भी वैसे ही आदमी कभी कभी मनोरथोपलब्ध पुत्र, पत्नी, ऐश्वर्यादि द्वारा अथवा मनोरथ प्राप्त मृत पिता आदि मानो परलोक से आये हैं, ऐसा सोचकर क्षण भर स्वप्न तुल्य सुख का अनुभव करता है ॥१७॥

कभी-कभी वे व्यापारी पर्वतारोहण की अभिलाषा कर काँटे-कंकड़ों से बिद्ध पद होकर दुःखी हो जाते हैं। इधर संसार में गृहस्थ कभी-कभी पड़ोसी की बड़े-बड़े काजकर्मों में आसक्ति देख कर 'ये लोग प्रतिष्ठा पाने के लिये यह सब कर रहे हैं, मैं क्यों नहीं कर सकता' यह सोच कर पर्वत सदृश अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा अथवा पुत्र-कन्या के विवाह आदि द्वारा यश पाने की इच्छा करने लगता है, पर सहायता आदि के अभाव में विघ्न आने से निराश हो जाता है ॥१८॥

कभी-कभी वे व्यापारी जठरानल से पीड़ित होकर अपने लोगों पर बिगड़ उठते हैं। उसी प्रकार कभी-कभी कुटुम्ब युक्त पुरुष अन्नाभाव के कारण उपवास करता है अथवा भर पेट अन्न नहीं मिलता, तो दुःसह जठरानल से पीड़ित होकर धैर्य छोड़कर परिवार पर क्रोध करता है ॥१९॥

हे राजन्! कभी-कभी वे व्यापारी अपने अनजाने में अजगर से ग्रसित हो जाते हैं, कभी दन्दशूक (रेंगने वाले जन्तु) से दंशित हो मृतकवत् हो जाते हैं; फिर कभी अन्धकूप में जा गिरते हैं। इस संसार में भी लोग निद्रारूपी अजगर से ग्रस्त होते हैं। कभी दुर्जनों द्वारा सम्मान नष्ट कर दिये जाने से निद्रारहित होकर दुःखरूपी अन्ध कूप में जा गिरते हैं,

Scanned with CamScanner

कारण-सम्मान नष्ट हो जाने से विवेक शून्य हो उठते हैं ॥२०-२१॥

कभी-कभी वे वणिक् मधु खोजने लगते हैं और मधु-मक्खियों द्वारा काट लिये जाने से अतिशय दुःखी होते हैं। कभी शहद पाकर भी उसका भोग नहीं कर पाते, क्योंकि अन्य व्यक्ति आकर बलात् छीन ले जाता है। उसी तरह इस जगत् में आदमी कामभोगरूपी मधुकणा की खोज में लगकर पर पत्नी और पर द्रव्य का अपहरण कर लेता है, पर उस स्त्री के स्वामी आदि के द्वारा अथवा राज कर्मचारियों द्वारा पकड़ा जाकर उनका दण्ड प्रहारादि भोगता है, निहत होता है। देहान्त के पश्चात् अपार नरक में जा पड़ता है। द्रव्यादि देकर बन्धनादि से मुक्त भी हो जाय, फिर भी स्व अपहृत पर पत्नी और पर-द्रव्य को भोग नहीं पाता, कारण—अन्य बलिष्ठ लम्पट व्यक्ति उनका अपहरण कर ले जाता है। फिर कोई तीसरा व्यक्ति दूसरे से अपहरण कर ले जाता है। इस प्रकार कोई भी पूर्णरूपेण भोग नहीं कर पाता; जीवन के अन्त में केवल नरक-भोग ही होता है। इसीलिये पण्डित जन कहते हैं—इहलोक परलोक के अपने कर्म ही संसार के जन्म क्षेत्र हैं।

हे राजन्! जैसे वन में किसी-किसी स्थान पर वणिक् लोग शीत-ग्रीष्म-वर्षा सम्बन्धी कष्ट दूर करने में असमर्थ होते हैं, वैसे ही सांसारिक लोग (देहात्मवादी) आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुर्दशा-निवारण में असमर्थ होकर दुरन्त चिन्ता से भर उठते हैं ॥२२-२५॥

Scanned with CamScanner

हे राजन् ! वणिकों की तरह कहीं-कहीं इतर मानव लोग परस्पर सौहार्द स्थापित कर वाणिज्य-व्यवसाय करते हैं, किन्तु वित्तीय शठतावश एक व्यक्ति दूसरे को ठगकर बीस कौड़ी अथवा उससे कुछ कम अपहरण करना चाहता है; इससे दोनों में द्वेष उत्पन्न हो जाता है ।।२६।।

हे राजन् ! इस संसार-अरण्य के मार्ग में महत् परिश्रम तो है ही, उसके साथ सुख-दुःख, राग-द्वेष, भय-अभिमान, प्रमाद-उन्माद, शोक-मोह-लोभ, मात्सर्य-ईर्ष्या, क्षुधा-पिपासा, अवमान, आधि-व्याधि, जन्म-जरा-मृत्यु आदि सुमहत्, उपसर्ग (रोग, सङ्कट) भी विद्यमान हैं ।।२७।।

हे महाराज ! वन में भ्रमण करते-करते वणिक् लोग कहीं किसी लता-शाखा का आश्रय ले लेते हैं, तो वहाँ पक्षियों की अस्फुट मधुर ध्वनि सुनने की अत्यन्त स्पृहा प्रकट करते हैं। उसी तरह इस संसार में देवमायारूपी स्त्री की भुज-लता द्वारा आलिङ्गित होकर पुरुष विवेक शून्य हो जाता है, रमणी का क्रीड़ामृग बनकर उससे पुत्र-कन्या प्राप्त करता है; फिर पुत्र-वधु और उसके पुत्र-कन्याओं को देखना चाहता है। इन सबका प्रीति जनक मधुर आलाप सुनकर और इन्हें देख-देख कर वह अपना हृदय हार बैठता है, आत्मा को घोर अन्धकार में निक्षेप कर देता है ।।२८।।

हे राजन् ! मूर्ख वणिक् वन में कभी-कभी हरिचक्र (सिंह समूह) से डरकर बगला, गिद्ध आदि से सख्यता कर लेता हैं। उसी प्रकार इस संसार में आदमी विष्णुचक्र से डरकर (परमाणु काल से द्वि-परार्ध काल तक अति वेरावान्

Scanned with CamScanner

कालचक्रवत् घूमकर बाल्यादि क्रमसे तृण से ब्रह्मा तक सभी भूतों का संहार करता है, श्रीविष्णु-आयुध उसी कालचक्र से त्रस्त होकर) पाखण्डियों द्वारा निरूपित बगला-गिद्धादि तुल्य देवताओं का आश्रय लेता है, किन्तु यज्ञपुरुष साक्षात् भगवान् का आदर नहीं करता। शिष्टाचार रहित पाखण्डियों के साथ मूल प्रमाण शून्य उन्हीं के आगमों में वर्णित देवताओं की आराधना में श्रद्धा रखता है और इस प्रकार वह पाखण्डियों के दल में मिल जाता है। वे भी उसका थोड़ा-सा अपराध देखकर उसका धनादि अपहरण कर अपने दल से निकाल देते हैं। तब वह निगमोक्त आचरण सम्पन्न ब्राह्मणों के कुल में जाकर रहने लगता है, किन्तु ब्राह्मण-कुल के आचरणों उपनयन आदि श्रौत-स्मार्त कर्मानुष्ठानों से यज्ञ पुरुष की आराधना करने में उसकी रुचि नहीं होती, तो वह शूद्र कुल में वास करता है,। शूद्र कुल के आचरण वानर-जाति को तरह केवल मिथुनी भाव (अर्थात् मूल्यादि द्वारा परिणीता और विधवा स्त्रियों का सङ्ग) और कुटुम्ब-भरण यही उसे रुचिकर लगते हैं। वह स्त्री-संग को परमसुख मानता है, इसी कारण वह स्त्री के साथ खाना-पीना, रहना, परस्पर मुख-दर्शनादि ग्राम्य कर्मों में लीन होकर अपने मृत्युकाल तक को भूल जाता है।२९-३१।।

कोई-कोई वणिक् स्त्री-पुत्रादि वत्सल होकर उनके प्रिय वृक्ष-समूह से प्रेम करते हैं। उसी प्रकार इस संसार में-आदमी बन्दर की तरह स्त्री-सङ्ग को परम महोत्सव मानकर दृश्य पदार्थों में आसक्त होकर स्त्री-पुत्रादि के प्रीतिमान होता है।।३२।।

Scanned with CamScanner

कोई-कोई वणिक् प्रमादवश गिरिकन्दरा में गिरकर वन्यहस्ती के भय से लता का सहारा ले बैठता है। उसी तरह इस संसार-मार्ग में अवरुद्ध होकर मनुष्य कभी-कभी महा-रोगादि जनित मृत्युरूपी हस्ती के भय से उसके निवारण के लिये कुकर्मरूपी महा अन्धकार में आत्मा को मुद्ध कर देता है ।।३३।।

कभी-कभी आदमी अर्थ शून्य होकर शय्यासनादि-सुख से वंचित हो जाता है, असदुपायों से उनके संग्रह की इच्छा करके भी सफल नहीं होता, लोगों से अवमानना भी मिलती है। इस प्रकार अर्थासक्ति के कारण परस्पर वैरभाव बढ़ता है, विवाहादि सम्बन्ध भी स्थापित होते हैं, फिर उनका भी त्याग कर देता है।

हे महाराज ! इस संसार-मार्ग में नाना प्रकार के क्लेशों और उपसर्गों (रोग, संकट) से जो व्यक्ति बाधा प्राप्त होकर विपदग्रस्त अथवा मृत हो जाता है, उसे अन्यान्य लोग (पुत्रादि स्वजन) छोड़ देते हैं और नव जात पुत्र-कन्यादि प्राप्त कर पूर्वजों की तरह कभी शोक, कभी मोह, कभी हर्ष, कभी भय, कभी चीत्कार, कभी विवाह-गान आदि संसार धर्म में अवरुद्ध हो जाते हैं ।।३४-३७।।

संसार-अरण्य के पार यात्री का परिचय—

हे राजन् ! "इस संसार-अटवी में भ्रमण करने से उत्पन्न हुए क्लेशों से साधु पुरुष के अतिरिक्त और कोई पार नहीं हो सकता। साधु का अर्थ केवल साधु वेशधारी नहीं, जो लोग

Scanned with CamScanner

भगवत्परायण हैं; सर्व जीवों के विषय में कायिक, वाचिक और मानसिक दण्ड त्याग चुके हैं, अर्थात् जिन्होंने सर्वभूतों में मैत्री भाव स्थापित कर लिया है; जो उपशमशील (विशेषरूप से शम गुणावलम्बी) और उपरतात्मा (निवृत्त-विरक्त) हैं—ऐसे लोग इस भव अटवी के उस पार पहुँचते हैं।"

स्थूल और सूक्ष्म देह रूपी भवकूप में गिरे जीव की उत्तरण-उन्मुखता अथवा स्वरूपशक्ति के आविर्भाव से माया-शक्ति का अन्तर्धान।

द्वितीय चित्र का परिचय :

प्रथम चित्र में वर्णित भव-कूप में गिरे व्यक्ति ने साधु-सङ्ग के प्रभाव से अपनी अवस्था "के आमि केन आमाय जारे तापत्रय" (मैं कौन हूँ, मुझे तापत्रय क्यों जलाते हैं ?) अनुभव की साथ ही साथ उसके यत्न-आग्रह के अनुसार उसका संसार-ताप उसी प्रकार दूर हुआ, जिस प्रकार भूखे की प्रति ग्रास से तुष्टि पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति होती है (भा० ११।३। ४२)। क्रमशः उस व्यक्ति की सिद्ध चिन्मय देह की पुष्टि और अन्य कामनाओं की निवृत्ति होने लगी, अपनी देह और भोग्य पदार्थों के प्रति अनास्था उत्पन्न हो गई। यथार्थ आत्म-सम्मान-ज्ञान के साथ श्रीभगवद्दास होने का अभिमान जाग्रत हुआ। तब उसने बाहरी माया–दासत्व के परिचायक ("भारं परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं, न नमेन्मुकुन्दम्" इत्यादि भा. २।३।२१) वृथा भारमात्र वेश से अपमानित अनुभव किया। उसने श्रीकृष्ण-दासत्व परिचायक ("दिव्य श्रीहरिमन्दिराढ्य तिलकं कण्ठं सुमाल्यान्वितं, वक्षः श्रीहरि

Scanned with CamScanner

नामवर्णसुभगम् " इत्यादि) साधु वैष्णवों के आनुगत्य में उनका वेश धारण किया। साधनभक्ति-रज्जु का आश्रय लेकर साधन परिपक्व किया और चौबीस तत्त्वों से गठित मायिक स्थूल-सूक्ष्म देह को साँप की केंचुली की तरह छोड़ दिया। इस प्रकार अन्तश्चिन्तित भावसिद्ध चिन्मय देह (गीता ८।६ श्लोक में वर्णित—:'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्" इत्यादि एवं "साधने भाविवे जाहा, सिद्ध देहे पावे ताहा") प्राप्त कर वह माया के चिर दुःख-मय अन्धकूप संसार-कारागार रूप विदेश से चिर सुखमय अपने घर श्रीभगवद्धाम में श्रीकृष्ण के पादमूल के निकट लौट रहा है।

चित्कण जीव श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति—

जल-थल के मध्यवर्ती स्थान को तट कहा जाता है, जैसे नदी का तट, पुष्करिणी का तट। तट पर बैठा व्यक्ति इच्छा होने पर जल की ओर भी जा सकता है, स्थल की ओर भी जा सकता है। उसी प्रकार चित्शक्ति और जड़शक्ति के बीच जो शक्ति अवस्थान करती है, उसे तटस्था जीवशक्ति कहा जाता है। "उभय कोटि प्रवेशात्" (भगवत् सन्दर्भ)।

इस तटस्था शक्ति को चित् जगत् में जाने का जैसा अधिकार है, जड़ जगत् में जाने का भी वैसा ही अधिकार है। अतएव—

"आमातेइ सर्वदोष, पर दोषे करि रोष,
रोषे दोषे आपनि मिशाय।

Scanned with CamScanner

सर्ब दोष मोर मने, दूषि केन अन्यजने,
ना बुझिया करि हाय हाय ।।"

(मनःशिक्षा)

(साधन एवं सिद्ध के स्तर भक्तिकल्पलता के १–३ स्तवकों में)

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमूर्त्तितीर्षोर्नान्यः
प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो
भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ।। (भा०)

विविध दुःख-दावानल से प्रपीड़ित एवं अति दुस्तर संसार-सागर से पार होने के इच्छुक व्यक्ति के लिये पुरुषोत्तम भगवान् के लीला-कथा-रस-सेवन (श्रवण, कीर्तन, स्मरण) के अतिरिक्त और कोई नौका नहीं है।

श्रीभगवद्धाम में भी लीलाकथा श्रवण में जो समाधि हो जाती है उसे भी व्याधि कहा गया है। (श्रवण करते करते कभी-कभी समाधि अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो रसास्वादन बन्द हो जाता है। इसलिये समाधि को व्याधि कहा गया है) "श्रवणाद्विरोधाभासः" (श्रीआनन्द-वृन्दावनचम्पू– १।८७–८८)

"जीवन्मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहि त्यजि ध्यान।
जे हरिकथा न करहिं रति, तिनके हृदय पाषाण ।।"

(रामायण)

"संसार-दुःखजलधौ पतितस्य कामक्रोधादि–
नक्रमकरैः कवलीकृतस्य ।

Scanned with CamScanner

दुर्वासनानिगड़ितस्य निराश्रयस्य चैतन्यचन्द्र
मम देहि पदावलम्बम् ॥"

"नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥"

"गुरु रूपे घरे-घरे, मंत्र देय सबाकारे,
वैष्णव रूपेते देय शिक्षा।
शास्त्ररूपे देय ज्ञान, आत्मारूपे अधिष्ठान,
देख ताँर कारे वा उपेक्षा ॥" (मनःशिक्षा)

"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।'
(श्रीभा० ११।२०।१७)

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं—"यह आद्य अर्थात् श्रेष्ठ एवं समस्त पुरुषार्थों की मूल, सुदुर्लभ नर देह अति उपयोगी पटुतर प्लव (भवसागर-पार होने के लिये नौका) है। दैवात् श्रीगुरुदेव उस में कर्णधार रूप में प्राप्त हुए हैं। मेरी कृपा अनुकूल पवन तुल्य है एवं दैवात् वह दुर्लभ नर देह-रूपी नौका भी सुलभ हो गई है, अर्थात् अनायास ही प्राप्त हो गई है। इतने सुयोग के होते भी जो व्यक्ति भव-सागर से पार नहीं होता, अर्थात् पार होने की चेष्टा नहीं करता, वह आत्मघाती है।"

Scanned with CamScanner

भगवान् राम ने कहा है—

"नर शरीर भव-वारिधि कहुँ बेरो।
सम्मुख मारुत अनुग्रह मेरो ॥
कर्णधार सद् गुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

जो नर तरहि भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्दमति, आतम हनि गति जाइ ॥"

(तुलसी कृत रामायण)

श्रुति कहती है—

**"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः आ ये सर्वे दिव्यधामनि तस्थुः।
वेदाहमेनं पुरुषं महान्तम्, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥"**

हे अमृत-पुत्रो (उत्तराधिकारियो)! इस विश्व में जो सब हो एवं स्वर्गादि दिव्यधामों में जो हो, सभी सुनो, मैंने उस महान् पुरुष को जान लिया है, जो माया के उस पार अवस्थित है एवं आदित्य वर्ण अर्थात् ज्योतिर्मय स्व-प्रकाश है।

(श्वेताश्वतर)

**"प्रेयो बित्तात् प्रेयः पुत्रात् प्रेयोऽन्यस्मात्।
सर्वस्मात् अन्तरतरं यत् अयं आत्मा ॥"**

(वृहदारण्यक)

परमात्मा अन्तरतर होने के कारण वित्त से भी प्रिय, पुत्र से भी प्रिय, अन्य सभी से प्रिय है।

**"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "शुद्धं अपापविद्धम्"
"आनन्दरूपम् अमृतम्" "प्राणस्य प्राणः"**

Scanned with CamScanner

"प्रिय इत्येव उपासीत"

(श्रुति)

वह परब्रह्म सत्यस्वरूप हैं, वह शुद्ध एवं अपापविद्ध हैं। वह आनन्दस्वरूप एवं अमृत-स्वरूप हैं, वे प्राणों के प्राण, अर्थात् प्राणों से भी प्रिय हैं; उनकी प्रिय बुद्धि से उपासना करनी होगी।

प्रश्न उठता है :—अमृत के पुत्रों को त्रितापानल दग्ध क्यों करते हैं? इसका उत्तर प्रथम चित्र में दिया गया है—अपने स्वरूप की विस्मृति।

"सेइ दोषे मायापिशाची दण्ड करे तारे।
आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे जारि मारे॥"

(श्री चै० च०)

"यथा व्याघ्राविष्टपुरुषस्य व्याघ्रत्व प्रतीतिकाले अपि पुरुषत्वमेव सत्यं न तु व्याघ्रत्वम्; अत्र जीवस्य अविद्या-सम्बन्ध समयाज्ञानात् एव अनाद्यविद्यासम्बन्ध इति सर्वलोक-प्रसिद्धिः। (भा० ११।१९।७ सारार्थदर्शिनी टीका)

यथा - व्याघ्राविष्ट पुरुष जब स्वयं को बाघ समझता है, तब भी वह पुरुष ही होता है, बाघ नहीं। उसी प्रकार अविद्याग्रस्त जीव भी जब स्वयं को भगवद्दास से भिन्न (देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) समझता है, तो वह अविद्या-कल्पित भ्रान्ति मात्र ही होती है।

लक्ष्मण जी निषादराज से कहते हैं—

"सपनेइ होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ॥
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

Scanned with CamScanner

मोह निशा सब सो वन हारा। देखहि स्वप्न अनेक प्रकारा॥
यहि जग जामिनी जागइ जोगी। परमारथ पर प्रपंच वियोगी॥
जानिह तबहिं जीव जग जागा। जब जब विषय विलास विरागा।
जो स्वपनेहि सिर काटहि कोई। बिनु जागे दुःख दूर न होई॥"
(तुलसीकृत रामायण)

अर्थात् स्वप्न में मस्तक काटने वाले व्यक्ति के न जगने तक जैसे दुःख और भय दूर नहीं होता, वैसे ही अपने स्वरूप को लेकर भ्रान्त अविद्या ग्रस्त जीव का दुःख (प्रकृत ज्ञान न होने तक दूर नहीं होता)।

तभी जननी श्रुति कहती हैं —

"उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥"

हे जीवो! अज्ञान-निद्रा से जागो और विषय—शैय्या से उठ बैठो (आत्माभिमुखी हो) तथा आत्मतत्त्ववित् पूर्वाचार्यों का अनुग्रह प्राप्त कर आत्मतत्त्व अर्जित करो, कारण—आत्मतत्त्व अर्जित करने का पथ अतिशय दुर्गम और क्षुरधार की तरह सुतीक्ष्ण तथा दुस्तर है। कवियों ने इस प्रकार वर्णन किया है।

"नैषा तर्केण मतिरापनेया, प्रोक्तान्येन सुज्ञानाय प्रेष्ठ।"
(कठोपनिषद्)

धर्मराज यम ने नचिकेता से कहा है—

"हे प्रेष्ठ! अपनी परतत्त्व-ग्रहण में समर्थ बुद्धि को

Scanned with CamScanner

शुष्क तर्क द्वारा अपमार्ग पर मत ले जाना। वेदोक्त गुरु द्वारा उपदिष्ट होने पर तुम्हारी यह बुद्धि उत्कृष्ट फल देगी।"

"मायामुग्ध जीवेर नाहि स्वतः कृष्ण ज्ञान।
जीवेर कृपाय कैल कृष्ण वेद-पुराण॥
शास्त्र-गुरु-आत्मारूपे आपना जानान।"

(श्रीचै० च०)

"चारि वेद दधि नवनीत भागवत।
मथिलेन शुक खाइलेन परीक्षित॥"

(श्रीभक्तमाल)

उसी सर्ववेदान्तसार श्रीमद्भागवत के घनतम निर्यास द्वारा विरचित श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यलीला बीसवें परिच्छेद में जीव की दुःखनिवृत्ति एवं चरम सुख प्राप्ति का साधन बताया है—

"इहाते दृष्टान्त जैछे दरिद्रेर घरे।
सर्वज्ञ आसि दुःखी देखि पुछये ताहारे॥
तुमि केन दुःखी, तोमार आछे पितृधन।
तोमारे ना कहिल, अन्यत्र छाड़िल जीवन॥
सर्वज्ञेर वाक्ये करे धनेर उद्देशे।
ओइछे वेद-पुराण जीवे करे कृष्ण उपदेशे॥
सर्वज्ञेर वाक्ये मूल धन अनुबन्ध।
सर्वशास्त्रे उपदेशे श्रीकृष्ण सम्बन्ध॥
'बापेर धन आछे' जाने धन नाहि पाय।
तबे सर्वज्ञ कहे तारे प्राप्तिर उपाय॥

Scanned with CamScanner

एइ स्थाने आछे धन यदि दक्षिणे खुदिवे।
भीमरुल बरुली उठिवे, धन ना पाइवे॥
पश्चिमे खुदिले ताहा यक्ष एक हय।
से विघ्न करिवे धन हाते ना पड़य॥
उत्तरे खुदिले आछे कृष्ण अजगरे।
धन नाहि पावे, खुदिते गिलिवे सबारे॥
पूर्व दिके ताते माटि अल्प खुदिते।
धनेर जाड़ि पड़िवेक तोमार हातेते॥
ओइछे शास्त्र कहे कर्म, ज्ञान, योग त्यजि।
भक्त्ये कृष्ण वश हय, भक्त्ये ताँरे भजि॥"

दक्षिण दिशा को कर्ममार्ग कहा गया है। उस दिशा में खोदने पर बर्र-ततैया निकलेंगे, वैसे ही कर्ममार्ग पर चलने से भी स्वर्गादि भोगस्थान प्राप्त होंगे। वहाँ असूयादि रूप बर्र-ततैयों के दंशन की तरह कष्टदायक होंगे। कर्मासक्त जीव विविध यंत्रणाओं का आकर होता है।

अजगर-जैसा ज्ञानमार्ग है, यक्ष-जैसा योग-मार्ग। वस्तुतः दोनों ही प्रकार की मुक्तियों से सेव्य-सेवक सम्बन्ध नष्ट हो जाता है, अतएव सभी प्रकार की सेवा-वासना भी तिरोहित हो जाती है। "प्रायः सायुज्यमुक्ति स्व-सुखजातीयं सुखं स्यात् अत्र योगीनाम्" (भ. र. सि. पू. १।३)। भक्त के निकट सायुज्य मुक्ति अति तुच्छ होती है। स्तवावली ग्रन्थ में वर्णित हैं—"**कथा मुक्ति-व्याघ्रशा न शृणु किल सर्वात्म-गिलनी।**" अर्थात् व्याघ्र-जैसी मुक्ति आत्मा को पूरी तरह निगल जाती है। ज्ञानी और योगी की साधन-प्रणाली (ध्यान) में कोई अन्तर नहीं है। इतना ही है कि योगी का साधन

Scanned with CamScanner

चित्तवृत्ति निरोध प्रधान है और परमात्मतत्त्व में सायुज्य मुक्ति मिलती है; ज्ञानी निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप के ध्यान के फल स्वरूप ब्रह्मसायुज्यरूपी निर्वाणमुक्ति प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त योग की विभूति अणिमा आदि अपसिद्धियों के कुहक (इन्द्रजाल) में पड़कर जीव अशेष प्रकार से लांछित-वंचित होता है।

"सायुज्य सुनिते भक्तेर हय घृणा-भय।
नरक वांछये तबु सायुज्य ना लय ॥
ब्रह्मे ईश्वरे सायुज्य दुइत प्रकार।
ब्रह्म-सायुज्य हैते ईश्वर-सायुज्य धिक्कार ॥"

(श्रीचै० च०)

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण में द्विविध मुक्ति वर्णित है—

**"मुक्तिस्तु द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता।
निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥
हरिभक्तिस्वरूपाञ्च मुक्तिं वांछन्ति वैष्णवाः।
अन्ये निर्वाणरूपाञ्च मुक्तिं वांछन्ति मानवाः ॥"**

पूर्व दिशा को भक्तिमार्ग कहा गया है। इस मार्ग के साधन से अति सहज ही श्रीकृष्ण-प्रेमसेवा प्राप्त होगी। जैसे पूर्व को छोड़ अन्य दिशाओं में सूर्योदय नहीं होता, वैसे ही भक्ति को छोड़ अन्य किसी उपाय से श्रीकृष्ण सेवा की अभिव्यक्ति नहीं होती। श्रीकृष्ण एकमात्र भक्ति के ही वशीभूत हैं। श्रुति कहती हैं—

**"भक्तिरेवैनं नयति, भक्तिरेवैनं दर्शयति,
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसीति।"**

Scanned with CamScanner

भक्तिसाधना का क्रम यथा—श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग तृतीय लहरी में वर्णित—

"आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥"

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला २३ वें परिच्छेद में—

"कोनो भाग्ये कोनो जीवेर श्रद्धा यदि हय।
तवे सेइ जीव साधुसङ्ग करय॥
साधुसङ्ग हैते हय श्रवण-कीर्तन।
साधनभक्त्ये हय सर्वानर्थ निवर्तन॥
अनर्थ निवृत्ति हैले भक्त्ये निष्ठा हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये रुचि उपजय॥
रुचि हैते हय तवे आसक्ति प्रचुर।
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णप्रीत्यंकुर॥
सेइ भाव गाढ़ हैले धरे प्रेम नाम।
सेइ प्रेम प्रयोजन सर्वानन्द धाम॥

यह श्रद्धा जीव किस प्रकार प्राप्त करेगा?

"श्रद्धा वैचित्र्यात् फलवैचित्र्यम्॥"

(भा० ५।२६।२)

इसके उत्तर में भगवान् कपिल देव ने अपनी माता देवहूति से भा० ३।२५।२१–२५ श्लोकों में कहा है—

हे माता! सुन्दर चरित्र ही जिनका अलंकार है, वे

Scanned with CamScanner

सब साधुगण सहिष्णु, दयालु, सभी प्राणियों के सुहृद, शत्रुहीन एवं शमगुण युक्त होते हैं। जो मुझ में एकान्त प्रीतियुक्त दृढ़ भक्ति रखते हैं, मेरे लिये कर्म त्यागते हैं और स्वजन-बान्धवों को भी छोड़ देते हैं, पूछे जाने पर मेरे सम्बन्ध में बात करते हैं और श्रवण करते हैं, मद्गतचित्त ऐसे साधुजन सर्व संगवि-वर्जित हैं। इसीलिये वे लोग संग-दोष हरण करते हैं, अतएव तुम्हारे लिये उन्हीं का सङ्ग प्रार्थनीय है।

हे जननि ! ऐसे साधुजनों का सङ्ग मिलने पर मेरी महिमा सूचक कथायें उपस्थित होती हैं। वे हृदय और कर्णों के लिये रसायन-स्वरूप होती हैं। उन कथाओं को सुनते-सुनते अविद्या-विनाशकारी मेरे प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है फिर क्रमशः रति और प्रेमभक्ति उदित होती है।

"श्रद्धा शब्दे विश्वास कहि सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णे भक्ति कैले सर्व कर्म कृत हय॥"

(श्री चै० च०)

उत्साह ही श्रद्धा का जीवन है। भक्ति रसामृतसिन्धु श्लोक २५।५७–५८ में उत्साह के विषय में कहा है—साधुजनों द्वारा प्रशंसित अभीष्ट (भगवद्भजन) विषय में स्थिरतरा (निष्ठायुक्ता) एवं त्वरायुक्ता (व्याकुलतापूर्ण) मन की आसक्ति के भाव को उत्साह कहते हैं। इस उत्साह में काल की अनपेक्षा, धैर्य त्याग, व्याकुलता एवं उद्यम-प्रचेष्टा आदि देखने में आती हैं।

श्रद्धा से आसक्ति तक साधनभक्ति के सात स्तर हैं। साधनभक्ति के दो गुण हैं—क्लेशघ्नी एवं शुभदा। भावभक्ति

Scanned with CamScanner

के चार गुण हैं—क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षलघुताकृत्, सुदुर्लभा। प्रेमभक्ति के गुण छह हैं—क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षलघुताकृत्, सुदुर्लभा, सान्द्रानन्दविशेषात्मा और श्रीकृष्णाकर्षिणी। (भ. र- सि. पू. प्रथम लहरी)। अहंकार की दो वृत्तियाँ हैं—अहन्ता और ममता। अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' यह अभिमान। अहन्ता और ममता प्राकृत देह, गेह, स्त्री-पुत्रादि में अत्यन्त प्रगाढ़ होती है, तो उसे बन्धन कहते हैं। फिर जब निर्विशेष ज्ञान से स्वरूपानुभूति द्वारा (संवित् प्रधान विशुद्ध सत्त्व अथवा आत्मविद्या द्वारा) अहन्ता और ममता का लय हो जाता है, तो उसे मोक्ष या निर्वाण मुक्ति कहते हैं। जब ह्लादिनी प्रधान विशुद्ध सत्त्व गुह्यविद्या सेवा-उपयोगी चिन्मय सिद्धदेह में अहन्ता एवं सपरिकर रूप, गुण, लीलामाधुरी महासागर श्रीभगवत् विग्रह आदि में ममता अनन्य एव अत्यन्त प्रगाढ़ होती है, तो उसे ही भगवत्प्रेम कहा जाता है। यह बन्धन एवं मोक्ष से विलक्षण होता है, अर्थात् वह प्राकृत बन्धन भी नहीं और अप्राकृत गुणातीत चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष भी नहीं; वह सर्व पुरुषार्थ चूड़ामणि या पंचम पुरुषार्थ है।

"कृष्णदास अभिमाने जे आनन्दसिन्धु।
कोटि ब्रह्मसुख नहे तार एक बिन्दु॥"
(श्री चै० च०)

अहन्ता (मैं) ममता (मेरा) की वृत्ति—मायिक अनादि बहिर्मुख जीव की परमार्थ विषय में शून्य, व्यवहार विषय में परमात्यन्तिकी। दैवयोग से श्रद्धा का उदय हो जाय, तो परयार्थ विषय में गन्ध-मात्री, व्यवहार विषय में आत्यन्तिकी।

Scanned with CamScanner

साधुसङ्ग से श्रद्धा में प्रगाढ़ता आ जाय, तो परमार्थ विषय में आभासमयी, व्यवहार विषय में पूर्णा। अनिष्ठिता भजन क्रिया से परमार्थ विषय में एक-देशिनी (आंशिक), व्यवहार विषय में प्राय पूर्णा। निष्ठा से परमार्थ विषय में बहु देश व्यापिनी, व्यवहार विषय में प्रायिकी (सामान्य)। रुचि के स्वतः पर परमार्थ विषय में प्राय पूर्णा, व्यवहार विषय में एक-देशव्यापिनी। आसक्ति स्वर पर परमार्थ विषय में पूर्णा, व्यवहार विषय में गन्धमात्री। भाव या रति के स्तर पर परमार्थ विषय में आत्यन्तिकी, व्यवहार विषय में आभासमयी। प्रेम की अवस्था में परमार्थ विषय में परम आत्यन्तिकी, व्यवहार विषय में गन्ध-शून्या। (माधुर्यकादम्बिनी अष्टमामृतवृष्टि)।

"पूर्णाहन्तामयो साक्षाद्भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा।"

(प्रीतिसन्दर्भ अनु० ३१)

अर्थात् परमार्थ विषय में पूर्ण अहन्तामय अभिमान हो प्रेमलक्षणा भक्ति है।

"अस्तु तावद्भजन प्रयासः केवलताद्दशत्वाभिमानेनापि सिद्धिर्भवति।" (भक्तिसन्दर्भ अनु० ३०४)

ममता के परम आस्पद भगवान् के उद्देश्य से (भागवत श्लोक ६।११।२४-२७ में वृत्रासुर ने कहा है—

"हे भगवन्! आपके श्रीचरण युगल जिन लोगों के एक मात्र आश्रय हैं, मैं उन हरिदासों का अनुदास होऊँ, पीछे भी होऊँगा। आप मेरे जीवन के अधीश्वर हैं। मेरा मन आपकी

Scanned with CamScanner

गुणराशि का स्मरण करे, वाक्य उसका कीर्तन करे और शरीर आपके ही कार्यों में लगा रहे।

हे निखिल सौभाग्य के मूलाधार! मैं आपको छोड़कर स्वर्गलोक में ब्रह्मपद, समस्त पृथ्वी का आधिपत्य, रसातल का प्रभुत्व, योगलभ्य अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ अथवा मोक्ष—इन सबकी बिलकुल इच्छा नहीं करता।

हे पद्मपलाशलोचन श्रीहरि! जैसे अजातपक्ष (जिसके पंख नहीं निकले) पक्षी शावक भूख से कातर होकर अपनी मां की प्रतीक्षा करता है, क्षुधार्त शिशु मातृस्तन (दुग्ध) की आकांक्षा करता है, विरहकातरा पत्नी प्रवासस्थ पति को देखने के लिये अत्यन्त व्यग्र होती है, वैसे ही मेरा मन आपको देखने की इच्छा करता है।

हे प्रभो! अपने प्राक्तन कर्मों के अनुसार मैं आपकी मायावश देह-गेह, स्त्री-पुत्रादि के प्रति आसक्त होकर संसार-चक्र में परिभ्रमण कर रहा हूँ, पर यही प्रार्थना है कि आपके पुण्यकीर्ति भक्तों के साथ मेरा सख्य, बन्धुत्व, आसक्ति हो; देह-गेह, स्त्री-पुत्रादि के साथ अब और न हो।"

उपसंहार में—"कामिनामिति मलमूत्रतया परिणामिभिरन्नजलादिभिस्तर्प्यमाणो यो देहस्तत्तर्पणेच्छारूप कामस्वभावानामिति।" (भा० १०।३०।३४ क्रमसन्दर्भ टीका) अर्थात् जिस अन्न-जल के परिणाम मल-मूत्र हैं, उस अन्न-जल से पालित-पोषित है यह देह; उसी देह के सुख या तर्पण की इच्छा का नाम है काम; उस काम के रहते जीव यथार्थ हिताहित नहीं समझ सकता।

Scanned with CamScanner

"काम मोर हत चित, नाहि माने हिताहित"
(श्रील नरोत्तम ठाकुर)

अतएव साधु-शास्त्र-गुरुवाक्य में सुदृढ़ विश्वासरूपी श्रद्धा ही सभी श्रेय लाभों का मूल है।

"श्रद्धाशरणापत्त्योरैकार्थं लभ्यते।"

(भक्तिसन्दर्भ अनु० १७३) अर्थात् श्रद्धा और शरणागति का एक ही अर्थ है। शरणागति के छह प्रकार हैं—

"आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वजनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥"
(श्रीहरिभक्तिविलास ११।४१७।-१८ में वैष्णव तंत्र)

श्रीकृष्ण-प्रीति के अनुकूल विषयों को ग्रहण करने का संकल्प, प्रतिकूल विषयों का वर्जन, श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करेंगे—ऐसा दृढ़ विश्वास, उनका रक्षाकर्ता (पति) रूप में वरण, उन्हें आत्मसमर्पण एवं "हे भगवन्! मैं तुम्हारा हो हूँ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो" कहकर उनके आगे आर्ति-प्रकाश। ये छह लक्षण शरणागत के हैं।

इस शरणागति को पाने का उपाय एकमात्र साधुसंग है। "इयं प्रपत्तिः सत्संगहेतुका (तत्त्वसन्दर्भटीका, श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण)!

"तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतंविपाकम्।
हृद्वाग् वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स
दायभाक्॥"
(भा० १०।१४।८)।

Scanned with CamScanner

ब्रह्माजी बोले—"हे भगवन्! तुम्हारी अनुकम्पा का निरीक्षण कर अर्थात् कब तुम्हारी दया होगी—इस प्रतीक्षा में चातक की तरह लगातार अनासक्त चित्त से अपने अर्जित कर्म-फलों को भोगते-भोगते जो कायमनो वाक्य से तुम्हें नमस्कार करते हुए जीवित रहते हैं, वे मुक्ति पदके अधिकारी होते हैं।"

इस 'जीवेत' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में—वैष्णवतोषण्यां सन्दर्भे प्रणव व्याख्यायामार्षवाक्यम्—

"अकारेणोच्यते विष्णुः श्रीरुकारेण कथ्यते।
मकारस्तु तयोर्दासः पञ्चविंश प्रकीर्तितः॥"

अनुवाद—'अ' कार विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण, 'उ' कार श्री अर्थात् श्रीराधिका, दोनों का दासत्व अथवा अधीनत्व ही 'म' कार; 'म' कार को पंचविंश तत्त्व कहा जाता है। 'अ' कार 'उ' कार मिलकर 'ओ' कार होता है। 'ओ' कार से भिन्न 'म' कार की स्थिति की जैसे सार्थकता नहीं है, वैसे ही भगवान् के अधीनत्व के बिना अहं पदवाच्य जीव की स्वतंत्र स्थिति नहीं हो सकती।

अर्थात् 'मैं भगवद्दास हूँ' यह अभिमान ही भक्तिपथ पर अवस्थिति है; यही जीव का जीवन है और भक्तिपथ पर अवस्थान न होना ही मृत्यु है। जीवित पुत्र ही पितृ सम्पदा का अधिकारी होता है, मृत पुत्र नहीं।

इस श्लोक के 'भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् अंश की टीका—"सुखं दुःखं च भगवद् अनुकम्पायाः फलमेवेदम् इति पिता यथा स्वपुत्रं समये समये दुग्धं निम्बरसञ्च कृपयैव

Scanned with CamScanner

पाययति, आश्लिष्य चुम्बति, पाणितलेन प्रहरति, चेत्येवं मम हिताहितं पुत्रस्य पितेव मत् प्रभुरेव जानाति, नत्वहम्।"

(सारार्थदर्शिनी)

तात्पर्य—सुख और दुःख भगवत्कृपा के ही फल हैं। पिता अपने पुत्र को समय-समय पर दूध और नीमका रस देता है, आलिङ्गन, चुम्बन एवं हाथ द्वारा प्रहार करता है। यह सब एक ही कृपा के कार्य हैं, पुत्र का यथार्थ हित-अहित एकमात्र पिता ही जानता है। उसी प्रकार भगवत् पादपद्मों में प्रपन्न (शरणागत, आश्रित) भक्त सदा ही यह मानता है कि मेरे मङ्गल-अमङ्गल के समस्त विधान भगवान् की इच्छानुसार होते हैं। मैं अपने मङ्गल को उतना न समझता हूँ न जानता हूँ; मेरे सर्वस्व भगवान् ही मेरा मङ्गल-अमङ्गल जानते हैं। उनके जिस विधान से मेरा मङ्गल होता है, वे वही विधान कर रहे हैं और करेंगे। मुझे प्राकृतिक दुःख में रखने से मङ्गल होता है अथवा प्राकृतिक सुख में रखने से मङ्गल होता है, तो वे वही करेंगे। उनको इच्छा का अनुगामी होना ही मेरा जीवातु (प्राण, आहार) है—ऐसा सोचकर भगवद्भक्त अपने सुख-दुःख को ओर दृष्टि नहीं रखते, इसलिये प्रारब्ध ध्वंस की भी इच्छा उत्पन्न नहीं होती। उनके जो प्रारब्ध फल देखने में आते हैं, वे नाममात्र को 'बिड़ाली दन्तस्पर्श'—जैसे हैं; वस्तुतः वे लोग प्रारब्ध जनित सुख-दुःखों से अभिभूत नहीं होते। जैसे बिल्ली अपने बच्चे के गलदेश को फाड़कर दुःख नहीं देती, वैसे ही भक्ति की इच्छा से भगवान् अपने भक्त के प्रारब्धाकार रखकर भी बाहरसे प्रारब्ध को फल दुःख रोग-शोक केवल दिखाई देते हैं। उसे प्रारब्ध जनित दुःखादि नहीं

Scanned with CamScanner

देते। बिल्ली अपने मुंह और दाँतों से अपने बच्चे और चूहे दोनों को एक प्रकार से पकड़ती नजर आती है, फिर भी दोनों में अन्तर होता है। भक्त और अभक्त के प्रारब्ध भी उसी प्रकार के हैं। जो भक्त विशेष कारणवश प्रारब्ध-ध्वंस की इच्छा करते हैं, भक्ति के अनुसार उनके प्रारब्ध ध्वंस हो जाते हैं। यही विद्वद्वैष्णव-अनुभव है!

किन्तु साधारण मनुष्य के लिये—

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोके॥

सुख-दुःख का दाता और कोई नहीं है। दूसरा मुझे दुःख या सुख दे रहा है, यह गलत धारणा और कुबुद्धि है। मैं अच्छा-बुरा कार्य करता हूँ, यह वृथा अभिमान है, कारण—लोग स्वकर्म अर्थात् निज-निज कर्म-सूत्र में बँधे हैं।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (१।४।१५-१७) श्लोकों की टीका में श्रील मुकुन्ददास गोस्वामि-पाद ने कहा है (अनुवाद)—'साधनभक्ति के अनर्थ निवृत्ति स्तर पर प्रारब्ध-अप्रारब्ध रूपी पाप नष्ट होते हैं, रुचि स्तर पर पापबीज नष्ट होता है, आसक्ति स्तर पर मूल कारण अविद्या का नाश होता है।' (वही १।२।२२ टीका में) श्रीचक्रवर्तिपाद—'भक्तों का प्रारब्ध नष्ट होने पर भी जो सुख-दुःख दिखाई देते हैं, उसका कारण बता रहे हैं—(अनुवाद) सुख को भक्ति का आनुषंगिक फल और दुःख को कहीं भगवद्दत्त, कहीं वैष्णव-अपराधादि का फल

Scanned with CamScanner

समझना होगा। प्रारब्ध-क्षय पर देहपात क्यों नहीं होता? इसके उत्तर में (मुकुन्ददास) कहते हैं—भक्ति सहायक अन्यान्य कर्म रहते हैं, इसीलिये प्रारब्ध नष्ट होने पर भी देहपात नहीं होता।

जातरति भक्त युधिष्ठिर, भरत, चित्रकेतु आदि राजाओं के जो प्रारब्ध देखे जाते हैं, वह सब भगवान् की इच्छा है। इस इच्छा के मूल में दो निगूढ़ कारण हैं। यथा—

"रसिक शेखर कृष्ण परम कारण।
एइ दुइ हेतु हैते इच्छार उद्गम॥" (श्री चै० च०)

"गुरुपुत्रमिहानीतम्" इत्यादि "न्यायेन प्रारब्धरक्षणा-रक्षणयोः स्वप्रेमवर्धन विदग्ध श्रीभगवदिच्छैकमयत्वात् नान्यथा व्याख्यातम् इति—" (भा. १०।२१।१० वैष्णवतोषणी)

प्रेमोत्कण्ठा के बिना भगवद्दर्शन नहीं होते; यदि होते हैं, तो छाया-दर्शन मात्र। "आत्मानपेक्षया तदेकापेक्षयैव दैन्य-विशेषेण तत्प्राप्तिः" (भा० १०।३२।२ वैष्णवतोषणी)। अर्थात् अपने प्रति किसी भी प्रकार की अपेक्षा न रख एकमात्र श्रीकृष्ण की अपेक्षा से युक्त होकर दैन्य-पूर्ण उत्कण्ठा द्वारा उन्हें यथार्थ और परिपूर्ण रूप से प्राप्त किया जाता है।

"परिपूर्ण कृष्णप्राप्ति एइ प्रेमा हैते।
एइ प्रेमार वश कृष्ण कहे भागवते॥" (श्री चै० च०)

अतएव 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थः' निजजन के प्रेम को बढ़ाने में चतुर विदग्ध भगवान् इच्छा कर भक्तों का जो प्रारब्धाकार रहने देते हैं, वह विषदन्त हीन सर्प-दंशन की

Scanned with CamScanner

तरह नितान्त अकिंचित्कर होता है । उनके रोग-शोक-निर्धनता आदि दुःख प्रारब्ध के फल नहीं होते । (श्रीवृहद्-भागवतामृत २।३।१६६ और भा० १०।२९।९ सारार्थ-दर्शिनी टीका) ।

तभी कुन्तीदेवी द्वारका-गमनोद्यत श्रीकृष्ण से कहती हैं—

"विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम् ॥"
(भा० १।८।२५)

अर्थात् 'हे जगद्गुरो ! हम लोगों को वे विपदायें सदा लगी रहें, जिनके कारण हम तुम्हें सदा निकट देख पायें ।

उस श्लोक के 'हृद्वाग् वपुभिर्विदधन् नमस्ते' अर्थात् कायमनोवाक्य से तुम्हें नमस्कार—इस अंश की टीका में श्रील जीवगोस्वामिपाद ने कहा है—"पुरेह भूमन् इत्यादि रीत्या तद्विधकथयाभिरुचितीकृताय तुभ्यं हृद्वाग्वपुभिर्नमो विदधदिति तत्रत्वाशक्तिं कुर्वन्निति भावः । कथारुचिरुपतया तत्समीपं प्राप्तिया (१०।१४।५) तत्कथा श्रवणेनैव त्वं प्राप्तिर्नान्यथेत्युक्तम्" (१०।१४।६) स्वामिपाद । अर्थात् आपकी कथा सुनने से ही आपके पादपद्म प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं ।

'अतएव भक्तास्तदन्वेषणश्रमं परित्यज्य भक्तिविशेष-रूपतया त्वदीय रूपगुणलीला वार्तामेव शृण्वन्ति तेन वशी-कुर्वन्ति च तन्वादिभिर्नमन्तः । तत्र तन्वा सत्कारः श्रवणसमये-ऽञ्जलिबन्धनादिः । वाचानुमोदनादिः । मनसा च आस्ति-क्यादिः '
(भा० १०।१४।३ वैष्णवतोषणी) ।

Scanned with CamScanner

इससे समझ में आया कि तनु वाक्य और मन से नमस्कार विधान है—काय वाक्य और मन से कथारुचि के सहयोग से श्रीकृष्ण में आसक्ति। इसी प्रकार भगवत् रूप, गुण, लीलाकथा श्रवण करनी होगी। अर्थात् गृहकर्ता द्वारा श्रीमूर्ति का ध्यान, सादर अंजलि बाँधकर उनकी कृपा-प्रार्थना, उनके भाव में विभावित होकर कथा-श्रवण। इसका वाक्य द्वारा अनुमोदन, उच्च प्रशंसा, श्रोता का वक्ता के प्रति अभिनन्दन, मन में आस्तिकता-बुद्धि का संरक्षण, चित्त का विषयीभूत करण आदि।

भा० २।८।५–६ श्लोकार्थ—श्रद्धा से श्रीहरि की लीला-कथायें श्रवण-कीर्तन करते-करते अविलम्ब भगवान् स्वयं आकर श्रोता और वक्ता के हृदय में प्रवेश करते हैं। "स्व प्रयत्नं बिना भगवान् स्वयमेव हृदि विशति"—टीका—स्वामिपाद।

जैसे शरत्काल जल की आविलता (गदलापन) दूर कर देता हैं, वैसे ही भगवान् भी लीलाकथा-श्रवणरत भक्तों के कर्ण विवरों से हृदय में प्रवेश कर कामना-वासनादि-मल का शोधन करते हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृत आदि० प्रथम परिच्छेद में—

"शुनिले खण्डिबे चित्तेर अज्ञानादि दोष।
कृष्णे गाढ़ प्रेम हबे पाइबे सन्तोष॥"

श्रील बिश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका—'अज्ञानादि—अज्ञान, विपर्यास, भेद, भय-शोकाः। अस्यार्थः—अज्ञानं स्वरूपाप्रकाशः। विपर्यासो—देहादावहं बुद्धिः, भेद—भोगे।

Scanned with CamScanner

भेदः—भोगेच्छा, तत्प्रतिघाते भयम् । शोकः—तन्नाशे अहमेव मृतोऽस्मीति बुद्धिः ।'

अनुवाद—अज्ञानादि यथा—अज्ञान, विपर्यय, भेद, भय, शोक ।

अज्ञान—स्वरूपविस्मृति । विपर्यय—देहादि में अहन्ता-ममताबुद्धि । भेद—भोगवासना । भय—भोगवासना में प्रतिघात उपस्थित होने पर चित्त की भीति । शोक—भोग्यवस्तु के नाश होने पर 'मैं मर गया' ऐसा बुद्धि दोष—

यथा विष्णुयामल में—

"मोहस्तन्द्रा भ्रमो रुक्ष्मरसता काम उल्वणः ।
लोलता मदमात्सर्ये हिंसाखेदपरिश्रमौ ॥
असत्यं क्रोध आकांक्षा आशंका विश्वविभ्रमः ।
विषमत्वं परापेक्षा दोषा अष्टादशोदिताः ॥"

अष्टादश दोष । यथा, मोह—मुग्धता; तन्द्रा—खेद जनित परिश्रम; भ्रम—अन्य वस्तु में अन्य ज्ञान; रुक्ष्मरसता—प्रीति सम्बन्ध के बिना राग; उल्वण काम—दुःखप्रद लौकिक काम; लोलता—चांचल्य; मद—विवेकहारी उल्लास; मात्सर्य—परश्री कातरता; हिंसा—परद्रोह; खेद; परिश्रम; असत्य—मिथ्याभाषण; आकांक्षा; आशंका; विश्वविभ्रम—सांसारिक वस्तु में आवेश; विषमत्व—वैषम्य एवं परापेक्षा ।

श्रीशिव वाक्य—

"बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग ॥"
(रामायण)

Scanned with CamScanner

धर्म के क्रमविकास के सम्बन्ध में अब तक जितने प्रकार के आन्दोलन और समीक्षायें हुई हैं, वे श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला अष्टम परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के प्रश्नों और श्रीरामराय के प्रत्युत्तरों में विकसित-परिपुष्ट हुई हैं। जगत् के और किसी भी धर्मशास्त्र में उसके शतांश का एक अंश भी देखने में नहीं आता।

'ब्रह्म जिज्ञासा' तक ही वेदान्त की चरम सीमा है, अर्थात् शान्तभाव में ही उस जिज्ञासा की निवृत्ति है। "कृष्णे निष्ठा तृष्णा त्याग शान्तेर दुइ गुण"। "शान्तेर स्वभाव कृष्णे ममतागन्धहीन। परम ब्रह्म परमात्मा ज्ञान प्रवीण॥" "केवल स्वरूप-ज्ञान हय शान्त रसे। पूर्णैश्वर्य-प्रभु ज्ञान अधिक हय दास्ये॥" (श्री चै० च० मध्य० १९ वां परि०)

श्रीमद्भागवत ८।८।१४ श्लोक की टीका—"यदप्राकृत-सौरूप्यसौरम्यादि वैफल्यापत्तेः (विश्वनाथ) तेषां शमदमादि-गुणानां मायिकत्वात् इति" (क्रमसन्दर्भः)।

"प्राकृताप्राकृत विषयासक्तिमात्र रहित सनकादि इति" (सा० द० टीका)।

अर्थात् शान्त भक्तों की जैसे प्राकृत विषय रूप-रसादि में आसक्ति नहीं होती (यह श्लाघनीय है) वैसे ही अप्राकृत विषय भगवान् के सौन्दर्य, सौरम्य माधुर्य आदि के आस्वादन में भी आसक्ति नहीं होती अथवा सामर्थ्य नहीं होती (यह अश्लाघनीय है)। उन लोगों की शमदम आदि गुणों सत्त्व-गुणों की वृत्ति होती है। (ज्ञानी योगी मुनिगण)।

Scanned with CamScanner

शान्त में कृष्णनिष्ठता है, पर प्रेम की सेवा नहीं हैं; दास्य भक्ति में कृष्ण-निष्ठा और सेवा दोनों ही हैं।

"शान्तेर गुण दास्ये आछे अधिक सेवन।
अतएव दास्यरसेर हय दुइ गुण॥" (श्रीचै० च०)

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित प्रेमधर्म–साधना का आरम्भ होता है शान्त के ऊपर के स्तर अर्थात् दास्य प्रेम से। सख्य और वात्सल्य उसका क्रमविकास है एवं चरम विकास या परिणति है मधुरभाव में। मधुर में ही सभी भावों का समाहार है। यथा—

"आकाशादिर गुण जेन पर पर भूते।
एक दुइ गणने बाड़े पंच पृथिवीते॥
गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य पाय प्रति रसे।
शान्त दास्य सख्य वात्सल्येर गुण मधुरेते वैसे॥"
(श्री चै० च० मध्य० अष्टम)

महाप्रभु के महान् प्रेमधर्म में शाक्यसिंह (महात्मा बुद्ध) का वैराग्य, सरस्वती की विद्या, वृहस्पति की बुद्धि, इन्द्र का ऐश्वर्य, प्रह्लाद की सहिष्णुता, भीम-अर्जुन का शौर्य-वीर्य-पराक्रम, भीष्म की प्रतिज्ञा, युधिष्ठिर की सत्यनिष्ठा अथवा जगत् में जो कुछ गौरवजनक है, वह सभी अनुप्रविष्ट है। उनके प्रिय परिकरों श्रीपाद रूप-सनातन आदि आचार्यवर्यों के रचित ग्रन्थों के अनुशीलन से इन सब बातों की सत्यता का पता चलता है।

चौबीस सत्त्वों से गठित स्थूल और सूक्ष्म देहातीत इस

Scanned with CamScanner

चित्कण (तटस्था शक्ति) जीव का स्त्रीत्व पुरुषत्व अथवा नपुंसकत्व नहीं है। भाव के अनुरूप देह प्राप्त होती है।

"नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स वक्ष्यते॥"

(श्वेताश्वतर उपनिषद)

शान्तरस में चित्कण स्वरूप जीव का नपुंसकभाव, दास्य और सख्यरस में पुरुषभाव, वात्सल्य रस में मातृ वात्सल्य से स्त्रीभाव, पितृ-वात्सल्य से पुरुषभाव एवं मधुर रस में स्त्रीभाव उदित होता है। भाव के अनुसार परम ब्रह्म रसराज श्रीकृष्ण ही सभी के उपास्य हैं। शान्त-दास्यादि सभी रस चिन्मय हैं—

"आनन्द चिन्मय सब प्रेमेर आख्यान।"
"प्रेमेर स्वरूप देह प्रेम-विभावित॥"

[श्री चै० च० [

अतएव इन लोगों की देह चिन्मय है, अतः देह-देही भेद नहीं है। किन्तु माया के त्रिगुणों से निर्मित नश्वर देह जड़ वस्तु है और देही [चित्कण आत्मा] चिद् वस्तु है, अतएव देह-देही का भेद है। इस प्रकार चित् और जड़ की ग्रन्थि ही जीव का संसार-बन्धन है; दोनों के पार्थक्य का अनुभव ही जीवन्मुक्ति है। "मूर्खो देहाद्यहं बूद्धिः पंडितो बन्ध-मोक्षवित्" [श्रीभगवद्वाक्य भा० ११]।

भगवत् स्वरूप के वैशिष्ट्य से परिकरों का वैशिष्ट्य होता है, वैसे ही परिकर-वैशिष्ट्य से भगवत् स्वरूप का वैशिष्ट्य होता है। (प्रीतिसन्दर्भः)।

Scanned with CamScanner

"कृष्णप्राप्तिर उपाय बहुविध हय।
कृष्णप्राप्तिर तारतम्य बहुत आछय॥
किन्तु जार जेइ भाव सेइ सर्वोत्तम।
तटस्थ हइया विचारिले आछे तारतम्य॥

यह सब तारतम्य रसतत्त्व विचार जानने के लिये श्रीमद्भागवत, वृहद्भागवतामृत, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वल-नीलमणि, प्रीतिसन्दर्भ, अलङ्कारकौस्तुभ इत्यादि भक्तिरस-ग्रन्थों में वर्णित प्रत्येक का स्थायिभाव, विभाव,अनुभाव आदि समझना चाहिये।

श्रीमन्महाप्रभु के परिकर श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती-पादने स्वरचित श्रीवृन्दाबनमहिमामृत द्वितीय शतक श्लोक ३४, में वर्णन किया है—

"धन्यो लोके मुमुक्षुर्हरिभजनपरा धन्यधन्यस्ततोऽसौ
धन्यो यः कृष्णपादाम्बुजरतिपरमो रुक्मिणीशप्रियोऽतः।
यशोदेय-प्रियोऽतः सुबलसुहृदतो गोपीकांतप्रियोऽतः
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्यतिरसविवशाराधकः सर्वमूर्ध्नि॥"

जो इस पृथ्वी पर भवकूप से निकलने की इच्छा कर रहे हैं, वे मुमुक्षुगण धन्य हैं। जो हरिभजन परायण हैं, वे धन्य धन्य हैं। उन लोगों से भी उत्कृष्ट हैं वे लोग, जो श्री-कृष्ण पादपद्मों में परम आसक्तियुक्त हैं। फिर उनसे भी रुक्मिणीवल्लभ के प्रियजन धन्य हैं। यशोदानन्दन के प्रियजन उनसे और भी अधिक प्रशंसनीय हैं। उनसे सुबल सखा के प्रियगण और भी धन्य हैं; फिर उनसे गोपीकांताप्रिय के गोपी-

Scanned with CamScanner

वल्लभ के भजन परायण लोग और भी धन्य हैं, किन्तु श्रीमद्-बृन्दावनेश्वरी के परमरसविवश आराधक ही सबके शिरोमणि हैं।

उक्त साध्यशिरोमणि के सम्बध में श्रीपाद सनातन गोस्वामी प्रभु ने अपने श्रीवृहद्भागवतामृत ग्रन्थ में (२।१।२१) कहा है कि 'सर्वनैरपेक्षेण राधादास्येच्छवः परम्' अर्थात् जो लोग सभी प्रकार के साध्य-साधनों के विषय में अपेक्षारहित चित्त से और वैसे ही प्रेम के साथ सदा श्रीराधिका-दास्य की कामना से उनका नाम संकीर्तन करते हैं, वे परम श्रेष्ठ हैं। टीका में भी राधादास्य को 'सर्व असाधारण परम महासाध्य वस्तु' कहा गया है।

आभीर-पल्लीपति-पुत्र-कांता
दास्याभिलाषाति-बलाश्ववारः।
श्रीरूप-चिंतामलसप्तिसंस्थो
मत्स्वान्त दुर्दान्त हरेच्छुरास्ताम् ॥

(स्तवावली)

आभीर-पल्ली (ग्वालों के गाँव के)—पति नन्दराज के पुत्र श्रीकृष्ण की कान्ता राधिका के दास्य की मेरी अभिलाषारूपी बलवान अश्वारोही श्रीरूपगोस्वामी के चिन्तनरूपी निर्मल घोड़े पर चढ़कर मेरे चिन्तनरूपी-दुर्दान्त घोड़े का अभिलाषी हो, अर्थात् मेरी चिन्तनाभिलाषा श्रीरूप गोस्वामी के निर्मल चिन्तन के अनुरूप होकर श्रीराधादास्य में लगी रहे।

Scanned with CamScanner

परिशिष्ट

श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने भक्तिसन्दर्भ ५४ व अनुच्छेदमें कहा है—'देवादि-जन्मनि महाविषयावेशात्—पश्वादि-जन्मनि विवेकाभावाच्च, मानुषं जन्म च प्राप्य न बिलम्बेतेत्याह।'

अर्थात् देवादि जन्म उत्कृष्ट विषयभोगों के महा आवेश के कारण और पशू आदि जन्म विवेक के अभाव के कारण भजनोपयोगी नहीं होते। तभी शास्त्र कहते हैं, मानवदेह के अतिरिक्त अन्य देहों से, भगवद्भजन होने का नहीं।

'नरतनु भजनेर मूल' (श्रीपाद नरोत्तम ठाकुर)

मानवदेह में जो मन, बुद्धि, इन्द्रियादि पाई जाती हैं, अन्य अभिनिवेश (आसक्ति, अभिलाष) छुड़ाकर उन्हें श्रीकृष्ण-आवेश में भावित कर सकें, तो भजन-साधन सुखकर होता है। मानवदेह के अतिरिक्त अन्य सभी देहें—देवगन्धर्वादि और पशु आदि की देहें भोगदेह होती हैं, उनसे मात्र शुभाशुभ कर्मफल भोगे जाते हैं। उन देहों से नये कर्म भी नहीं किये जाते—कर्मफलों का खण्डन भी उन देहों में सम्भव नहीं; श्रीकृष्णभजन तो सम्भव है ही नहीं। मानवदेह नूतन-नूतन कर्मों की सृष्टि कर देही या आत्मा को पुनः बद्ध कर सकती है अथवा उपयुक्त भजनसाधना द्वारा जीव को कर्म के बन्धन से चिरमुक्त भी कर सकती है। यही कारण है कि शास्त्रों में

Scanned with CamScanner

मानवदेह की अशेष महिमा का वर्णन मिलता है। जो लोग साधुसङ्ग साधुकृपा के प्रभाव से मन को विषय आदि से दूर रखकर प्रेम से श्रीगोविन्द का भजनादि कर सकते हैं, वे ही मानवदेह धारण करने का अमृतमय फल साक्षात् अनुभव कर कृतार्थ होते हैं।

उपनिषद्-निबंध में देखा जाता है—सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् ने पहले-पहले अपनी बनाई गो-अश्वादि देहें देखकर "नैतत् सुकृतम्" अर्थात् यह ठीक नहीं हुई कहा था। अंत में मनोमत मानवदेह निर्माण कर वे सहर्ष बोल उठे थे—"एतत् वै सुकृतम्"—यह देह अति सुन्दर बनी हैं, कारण—इस देह से मनुष्य मुझे (ब्रह्म को) देखने योग्य ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। "ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः।" (भा. ११।९)

तृष्णया भद्रयाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया।
कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः॥
यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमण्।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च॥

(भा. ७।१३।२३-२४)

अजगर व्रती मुनि प्रह्लाद जी से बोले—"हे राजन्! संसार-प्रवाह प्रवर्तक जिस तृष्णा को समस्त भोगों द्वारा भी पूरा नहीं किया जा सकता उसी तृष्णा द्वारा मैं सभी कर्मों में प्रवर्तित होकर सभी योनियों में प्रविष्ट हुआ था। पीछे अपने कर्मों द्वारा भ्रमण करते हुए उस तृष्णा ने ही मुझे यदृच्छाक्रम से यह मनुष्यदेह दिलाई है। यह देह स्वर्ग और अपवर्ग(मुक्ति) की, कुक्कुर-शूकरादि तिर्यग्-योनि की एवं मानव योनि की द्वारस्वरूप है।

Scanned with CamScanner

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद की टीका का तात्पर्य—

संसार-प्रवाह की प्रवर्तक दुष्पूरणीय आशा तृष्णा को नदी सदृश कहा गया है। इन्द्र द्वारा की गई वृष्टि से नदियाँ जलपूर्ण होती हैं, किंतु ब्रह्माजी द्वारा रचे विषयभोग-उपकरणों के उपभोग से जीव की आशातृष्णा रूपी नदी नहीं भरती। जैसे नदी के स्रोत में तृण, काष्ठ, पाषाण, कण्टक आदि रहते हैं, वैसे ही मैं भी देवता-पशु-तिर्यग् आदि अनेक योनियों में रहा हूँ। नदी में स्थित ग्राह, कच्छप, आवर्त आदि के भय से छुटकारा पाने की आशा से जैसे अनेक उपाय रचे गये हैं, वैसे ही मैंने भी काम-क्रोधादि, रोग-शोक, क्षुधा-पिपासा, जन्म-मृत्यु से डरकर छुटकारे के लिये नाना प्रकार के कर्म किये हैं, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

जैसे नदी के बीच कदाचित् कहीं चतुष्पथ सैकतदेश (चार पथों से युक्त बालुकामय स्थान) देखने को मिलता है, वैसे ही मैंने भी इस संसार-प्रवाहरूप नदी में उस बालुकामय स्थान की तरह मानवदेह प्राप्त की है।

अर्थात् नदी के चतुष्पथ सैकतदेश को प्राप्त व्यक्ति इच्छा करते ही स्थल की ओर जाकर चिरशांतिमय स्थान प्राप्त कर सकता है, फिर नदी के स्रोत में पूर्ववत् डूब भी सकता है। उसी तरह संसार-प्रवाह प्रवर्तक दुष्पूर तृष्णा से युक्त मानव पुण्य द्वारा देवदेह, पाप द्वारा शूकरादि तिर्यग् देह, मिश्रित पाप-पुण्य द्वारा मानव देह और ज्ञान भक्ति-साधन द्वारा अपवर्ग

Scanned with CamScanner

प्राप्त करता है।(अर्थात् ज्ञानसाधन द्वारा। तृष्णा का क्षय होने पर निर्वाण मुक्ति और भक्तिसाधना से—कृष्ण भिन्न अन्य तृष्णा से शून्य होकर, केवल कृष्ण और कृष्ण से वैक तृष्णा के कारण पार्षद देह से साक्षात् प्रेमसेवानन्द प्राप्त करता है। मानवदेह धारण करने का यही चरम सौभाग्य है।)

लाख-लाख जन्मों में चक्कर काटते-काटते अब जो मनुष्यदेह पाई है, उसे संसाररूपी पिंजड़े का द्वार खुला मिला है, यह समझना चाहिये। पक्षी पिंजड़े का द्वार खुला पाकर भी तुच्छ थोड़े-से चावल के कणों के लोभ में पिंजड़ा छोड़कर जाना नहीं चाहता। वैसे ही संसार में आसक्त मनुष्य भी मनुष्यदेह पाकर भी तुच्छ संसार-सुख के लिये मुक्ति की कोई चेष्टा ही नहीं करता। उस खगवत् गृहासक्त व्यक्ति को शास्त्र में आरूढ़च्युत कहा गया है। यथा—भा. ११।७।७४ श्लोक में-

"यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम्।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढ़च्युतं विदुः॥"

तभी श्रील प्रेमानन्द ठाकुर ने मनःशिक्षा में कहा है—

"एमन जनमे, हरि ना बलिलि, फेरेते पड़िलि भाइ।
कहे प्रेमानन्द, आबार चौराशी, कबे वा फिरिते जाइ॥"
"कामिनी कांचन, हृदये रंजन, ताहाते मगन थाक।
एदिके तोमार, कि दशा घटिछे, तार किछु खोंज राख॥
चौराशी नरके, जावे एके एके, पथ परिष्कार प्राय॥"

(१०६)

Scanned with CamScanner

अनेक लोग सोचते हैं, आदमी मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता, कारण-मनुष्य-जन्म ही चरम जन्म है। फिर कोई-कोई ऐसा कहते हैं—मनुष्यदेह त्यागने पर पुनर्जन्म होता है, तो मनुष्य ही होता है, अर्थात् मनुष्य मरकर मनुष्य ही होता है, और कुछ नहीं। ये भ्रांत धारणायें हैं, आर्य शास्त्रानुमोदित नहीं। मनुष्य की वर्तमान कर्म-वासनाओं और पहले के वासनाबीजों दोनों के मिलने से लोगों का फलोन्मुख भाव प्रारब्ध प्रबल हो उठता है, तो वे देहत्याग के पश्चात् पुनः तदुपयुक्त फलभोगों के योग्य देह प्राप्त करते हैं। इस कर्म बन्धन से निष्कृति का उपाय है एकमात्र—साधुसङ्ग।

"राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे कृष्ण रटो रे।
सुरदुर्लभ देह मानव काहे विफल करो रे॥
महताश्रित हओरे चित जनम सफल करो रे।
भवसागर गरलाकर त्यजि मधुपुरी चलो रे॥
सुरवन्दिनी रविनन्दिनी प्रिय पावनि जल रे।
शीतल तट रेणुह, लूठो, मन करो निरमल रे॥
वृन्दा-विपिने मधु निधुवने, धूलाय लोटाये पड़ो रे।
ब्रह्मा महेश कमला त्रिदश वांछित जार रज रे॥
राधाकुण्ड अति अखण्ड महिमा सकलि परो रे।
जैछन वारि तैछन प्यारी, सह सेवन करो रे।
श्यामसम तीर्थ उत्तम श्यामकुण्ड जल रे॥
(वारि) परशमात्र हवे कृतार्थ, पाइबे भकति फल रे।
निभृत निकुंजे कुसुमपुंजे सह कोकिलगण रे॥
सरस हासि रासविलासी राइ-गिरिधारी स्मरो रे।

Scanned with CamScanner

गोवर्द्धन बन सबहु कानन रटना रटनि करो रे।
दास गोविंद मति अतिमन्द सदाइ स्मरण करो रे ।।"

जीव के प्रति देवर्षि नारद की अद्भुत करुणा और आशीर्वाद—

"त्वदीयास्ताः क्रीड़ाः सकृदपि भुवो वापि वचसा
हृदा श्रुत्याङ्गैर्वा स्पृशति कृतधीः कश्चिदपि यः।
स नित्यं श्रीगोपीकुचकलसकाश्मीर विलस-,
त्त्वदीयांघ्रिद्वन्द्वे कलयतुतरां प्रेमभजनम् ।।"
(श्रीवृहद्भागवतामृत १।७।१४४)

देवर्षि नारद ने श्रीकृष्ण से कहा—

जो व्यक्ति दृढ़ विश्वास के साथ जीवन में एकबार भी आपकी व्रजलीला का वाक्यों द्वारा वर्णन करता है, कर्णों से उसका श्रवण करता है अथवा अन्य किसी अङ्ग-प्रत्यङ्ग से आपकी उस क्रीड़ा को हृदय में धारण करता है, अथवा आपकी लीलास्थली का स्पर्श करता है अर्थात् जो कोई कृत-निश्चय होकर उन-उन लीलाओं और लीलास्थलों के महात्म्य के विषय में विश्वस्त होकर वाक्य द्वारा, नेत्र द्वारा, कर्ण द्वारा अथवा अन्यान्य अङ्ग-प्रत्यङ्गों द्वारा एकबार भी आपकी उन लीलाओं और लीलाभूमि का स्पर्श करता है (स्पर्श का अर्थ है : उन लीलाओं का वर्णन करने वाले श्रीभागवत महा-पुराणादि का स्पर्श – वाक्य द्वारा स्पर्श करने का अर्थ व्रजभूमि विषयक महिमा का कीर्तन; अङ्ग से लीलाभूमि के स्पर्श का अर्थ है: व्रजरज-सम्पर्क अर्थात् व्रजरज से अङ्ग का संस्पर्श), वह व्यक्ति श्रीराधिका आदि गोपियों के कुच-कलसरूपी

Scanned with CamScanner

मंगलघटों के कुंकुम से सुशोभित आपके पाद पद्मयुगल में नित्य प्रेमभक्ति प्राप्त करे।

श्रीगोपीनाथ ने बड़े प्रेम के साथ अपना दाहिना श्रीकर-कमल फैलाकर नारदजी की इस प्रार्थना के अनुसार 'एवमस्तु' अर्थात् 'ऐसा ही हो' कहा।

Scanned with CamScanner

—श्रीमत् कुञ्जविहारीदास बाबाजी महाराज,

Scanned with CamScanner

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी-जठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तरे, कृपा पारावारे पाहि मुरारे॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥"

सचित्र
संसार कूप में जीव की गति

मूल वंगला
श्रीमत् कुञ्जविहारीदास बाबाजी महाराज

तदाश्रित
श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज द्वारा
परिवर्धित

हिन्दी अनुवाद
श्रीव्रजगोपालदास अग्रवाल

श्रीकृष्णचैतन्य शास्त्र मन्दिर, श्रीराधाकुण्ड से प्रकाशित

श्रीश्रीगौर-जयन्ती
५०८ श्रीचैतन्याब्द

Scanned with CamSca

उत्सर्ग-पत्र

जिनके श्रीमुख के उपदेशामृत श्रवण कर यह ग्रन्थ संकलित
है और दोनों चित्र—भवकूप में जीव की पतित
अवस्था एवं भवकूप से निकलने का उपाय—
अङ्कित हैं, उन्हीं परमआराध्यतम गुरुदेव शैल-
कुलाधिराज श्रीश्रीगोवर्धन-तटाश्रित पंडिता-
ग्रगण्य श्री श्रीमत् अद्वैतदास बाबाजी
महाराज की प्रसन्नता के लिये गंगाजल
से गङ्गा - पूजा की तरह यह ग्रन्थ
उनके श्रीकर-कमलों में उन्हीं के
इस अयोग्य
समर्पित है।

दासानुदास
कुञ्जविहारी दास

मुद्रक :
श्रीहरिनाम प्रेस, बाग बुन्देला, वृन्दावन : फोन : 82415

Scanned with CamScanner

हिन्दी अनुवादक की ओर से

'भवकूपे जीवेर गति' (संसार-कूप में जीव की गति)—इस बंगला पुस्तिका के छह संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी में यह रचना छटवें संस्करण के अनुवाद के रूप में पहली बार पाठकों के आगे आई है। इसमें भक्ति-साधन सम्बन्धी अत्यन्त उपादेय सामग्री प्रस्तुत की गई है। पुस्तिका में दिये चित्रों और श्रीमद्भागवत् (पंचम स्कन्ध) के संसार-अरण्य के वर्णन ने विषय को और भी स्पस्ट एवं बोधगम्य बना दिया है। इस सुन्दर कृति के लिये सभी भक्त-साधक श्रीराधाकुण्ड निवासी परम भागवत पण्डित श्रीअनन्तदास जी और उनके परमाराध्य गुरुदेव श्रीमत् कुञ्जविहारीदास बाबा-जी महाराज के ऋणी रहेंगे। आशा है बंगला की तरह हिन्दी में भी इसका स्वागत होगा।

—ब्रजगोपालदास अग्रवाल
(अवकाश प्राप्त प्राचार्य)
द्वारा डॉ. ओ. बी. एल. कपूर
श्रीराधारमण मार्ग
वृन्दावन-२८११२१

अक्षय तृतीया
२५.४.९३

Scanned with CamScanner

सूची-पत्र

विषय

(क) प्रथम चित्र का परिचय— पृष्ठ

१—भव-कूप किसे कहते हैं ? उसमें गिरे जीव की अवस्था का चित्र १-३५

प्रथम चित्र पृष्ठ

२—जन्म-मृत्यु के ग्रास से रक्षा करने वाले ही यथार्थ आत्मीय। ,,

३—जन्म-मृत्यु के प्रवाह में घूमते ब्रह्मादि की परमायु ,,

४—जीवन्मृत किसे कहते हैं ? ,,

५—जन्म-मृत्यु प्रवाह का मूल कारण भगवत् विमुखता ३

६—भगवत् विमुखता किसे कहते हैं ? ४

७—ब्रह्माण्ड के सारे सुख महादुःख के उपादानों से गठित हैं और इन सुख-दुःखों के भेद हैं स्वर्ग एवं नरक ४

८—स्वर्ग-सुख भोगकर आये मनुष्य के चार चिह्न ५

९—नरक-दुःख भोगकर आये व्यक्ति के चार चिह्न ६

१०—चौरासी लाख योनियों का विवरण। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते एक बार मनुष्य-शरीर की प्राप्ति। ६

११—पशु से मनुष्य की भिन्नता। ७

१२—मनुष्य-मनुष्य का भेद। ९

१३—धर्म-अधर्म। ९

१४—वर्णाश्रम धर्म, यज्ञ, तपस्यादि धर्म के यथार्थ स्वरूप नहीं, धर्मसाधन के एक-एक उपाय मात्र। १०

Scanned with CamScanner

१५—अहैतुकी शुद्धा भगवद्भक्ति ही धर्म का प्रकृत स्वरूप है। उसकी प्राप्ति ही मानव जीवन का उद्देश्य है। देह-इन्द्रिय आदि की पिपासा-शांति ही उद्देश्य नहीं। १०
१६—भक्ति की सहायता के बिना वर्णाश्रमादि धर्म अपना-अपना फल प्रदान करने में समर्थ नहीं। १०
१७—मानव देह को देव-दुर्लभ क्यों कहा जाता है? ११
१८—ब्रह्मादि देवता भारतवर्ष में मानवजन्म लेने की इच्छा क्यों करते हैं? ११
१९—भगवद्भक्त-पदरज-स्मरण की महिमा। १३
२०—भगवान् की सज्ञा। स्वरूप, ऐश्वर्य और माधुर्य तत्त्व। अति सरल-प्रांजल उदाहरण। १४
२१—भक्ति के त्रिविध भेद, उनमें माधुर्यनिष्ठ भक्त की श्रेष्ठता। १६
२२—पाप के त्रिविध भेद, उनमें नास्तिकता में पाप की पूर्णता। नास्तिकता के बराबर पाप नहीं। १६
२३—श्रीकृष्ण स्मृति हीन व्यक्ति के किस-किस कार्य और विचार से परमायु क्षय होती है। ऐसा व्यक्ति जीवन्मृत श्मशान सदृश है। १८
२४—श्मशान में जीव-शिक्षा मानव देह की परिणति (२० पृष्ठों पर चित्र देखिये) १९
२५—मानवदेह अविभक्त साधारण सम्पत्ति। २२
२६—भव संसार-अरण्य का वर्णन और उस अरण्य को पार करने वाले यात्री का परिचय। २३
(ख) द्वितीय चित्र का परिचय— ३५-६४
२७—भव-कूप से जीव का बाहर निकलना। स्वरूप शक्ति के आविर्भाव से मायाशक्ति का पराभव। ३५

Scanned with CamScanner

२८—साधु-संग के प्रभाव से 'श्रीकृष्ण मेरे प्रभु हैं, मैं उन्हीं का दास हूँ, माया का दास नहीं इस सम्बन्ध तत्त्व की उपलब्धि ही यथार्थ आत्म-सम्मान ज्ञान की अनुभूति। विरक्ति की सहायता से साधु-शास्त्र-गुरु पदाश्रय। ३५

२९—भगवन्नाम, गुण-लीलाकथा सेवन को छोड़कर जीव की गति नहीं। साधन एवं सिद्ध सभी अवस्थाओं में अनुशीलनीय। ३७

३०—भगवत्कृपा ही साधु, शास्त्र एवं गुरुरूप में विराजित है। ३८

३१—अपने स्वरूप के विषय में भ्रान्त मृततुल्य जीवों के लिए श्रुति जननी की अमृतमयी आश्वासन वाणी। ३९

३२—अमृत-पुत्रों को त्रितापानल दग्ध क्यों करता है। ४०-४२

३३—मोहनिद्राभिभूत जीवों को जगाकर महत् आनुगत्य में चलने के लिए जननी श्रुति का उपदेश। ४१

३४—भगवान् में अहैतुकी शुद्धाभक्ति प्राप्ति ही सभी वेद-पुराणादि शास्त्रों की प्रतिपाद्य वस्तु है, यही जीवन का प्रयोजन तत्त्व है, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के भी ऊपर पंचम पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए ही श्रुति ने अधिकारी भेद से नाना प्रकार के उपायों या मार्गों का प्रवर्तन किया है। ४२-४४

३५—कर्म ज्ञान और योग से भक्ति श्रेष्ठ क्यों है? ४४

३६—भक्ति-प्राप्ति के उपाय—साधुसङ्ग, गुरुकृपा। साधु के लक्षण, भगवान् कपिलदेव की उक्ति। ४५

३७—भक्तिसाधना के विभिन्न स्तर। ४५

३८—श्रद्धा से आसक्ति तक साधनभक्ति के विभिन्न स्तर

Scanned with CamScanner

अभिधेय तत्त्व। उत्साह ही श्रद्धा का जीवन है, उत्साह की संज्ञा। ४६

३९—अहंता, ममता (मैं-मेरा) अहंकार की वृत्ति, वह मायिक देह अथवा तत्सम्बन्धित वस्तु में होने से बन्धन। नष्ट होने से निर्वाणमुक्ति और भगवान् में, उनके परिकरों, तत्सेवोपयोगी चिन्मय सिद्धदेह में होने से प्रेमभक्ति (पंचम पुरुषार्थ)। ४७

४०—भक्तिदेवी पूर्ण अहंता अभिमानमयी, अभिमान द्वारा ही सिद्धि लाभ। ४८

४१—ममता के आस्पद भगवान् के उद्देश्य से भक्त की प्रार्थना। ४८

४२—भक्तिशास्त्रों में यथार्थ प्रतीति, शास्त्रार्थ में निश्चयात्मिका बुद्धि, यत्नपूर्वक तदर्थ अनुभव एवं समाधानात्मक युक्ति को ही श्रद्धा कहा जाता है। इस श्रद्धा और शरणागति का एक ही अर्थ है। शरणागति के छह प्रकार। ५०

४३—श्रीहरि के चरणाश्रित भक्त किस प्रकार अपने प्रारब्ध भोगते हैं। ५०

४४—प्रणव का अर्थ—भक्तिपथ पर अवस्थान ही जीवका जीवत्व, अनवस्थान ही मृत्यु। ५१

४५—जातरति भक्तों का प्रारब्ध क्यों देखा जाता है? ५४

४६—दुःख ही जीवन की स्पर्शमणि है, तभी भक्त भगवत्-कृपा-दान के रूप में दुःख को अनुभव करते हैं। ५५

४७—'रसो वै सः' अर्थात् भगवान् रसस्वरूप हैं, लीला में ही उस रस की अभिव्यक्ति होती है, इसीलिये श्रीहरि

Scanned with CamScanner

का नाम-गुण-लीलाकथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण ही भक्तों का जीवातु है। भगवत् तत्त्ववेत्ता साधुमुख से ही श्रवण विधेय है। श्रवण और विधि महिमा। ५६-५९

४८—धर्म का क्रमविकास—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुरा रति उत्तरोत्तर श्रेष्ठ भाव के अनुरूप चित्कण जीव को चिन्मय सिद्धदेह (पार्षदत्व) मिलती है। ६०

४९—भगवत् स्वरूप के वैशिस्ट्य से पार्षदों अथवा परिकरों का वैशिष्ट्य होता है, अतएव भगवत्प्राप्ति के तारतम्य भेद से परिकरों का वैशिष्ट्य भी समझना होगा। ६२

५०—तारतम्य-विचार से व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की प्रेयसी व्रजसुन्दरियाँ सर्वश्रेष्ठ। उनमें वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा ही शिरोमणि। उन श्रीराधा का दास्य ही सर्व असाधारण परम महासाध्य वस्तु के रूप में निरूपित हुआ है। यही चिर-अनर्पित भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की अपार कृपा का दान है। ६३-६४

५१—उनके प्रिय परिकर श्रीपाद रूप सनातन आदि आचार्यों के आश्रित और उनके भव्य-आनुगत्य में विभावित साधक ही उक्त सम्पत्ति के अधिकारी होंगे

५२—परिशिष्ट। ६५

Scanned with CamScanner

भा. ३।१२,१६-२६ क्रम
सन्दर्भ सा. द. टीका

भगवान् ऋषभदेव ने देशपर्यटन के समय ब्रह्मावर्तदेश में ब्रह्मर्षि प्रवरगण की सभा में प्रजा के समक्ष अपने पुत्रों को उपदेश दिया था—

जो जन्म-मरण-प्रवाहरूपी मृत्यु के निवारण का उपाय नहीं जुटाते, वे शिक्षा-दान करने पर भी गुरु नहीं, हितावरण करने पर भी स्वजन नहीं, जनक और पालक होते पर भी पिता नहीं, गर्भ में धारण और पोषण करने पर भी माता नहीं, आराधित एवं वांछित फलदाता होते हुए भी देवता नहीं, पाणिग्रहण करने वाले रक्षक होने पर भी पति नहीं, अतएव जो संसार-बंधन से मुक्ति पाने का उपाय जुटा दें, वे ही प्रकृत आत्मीय हैं।

Scanned with CamScanner

कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशा
आला तेषां यदि न करुणा न त्रपा नोपशान्तिः ।
उत्सृज्यैतानथ यदुपते ! साम्प्रतं लब्धबुद्धि-
स्त्वामायातः शरणमभयं निर्घृणत्वात्तवारे ॥

—भ.र.सि. ३।३।२५

अयि नन्दतनूज किंकरं
पतितं मां विषमे
भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपंकज-
स्थितधूलीसदृशं
विचिन्तय ॥
साधु-शास्त्र-कृपाय यदि
कृष्णोन्मुख हय ।
सेइ जीव निस्तरे
माया ताहारे छाड़य ॥
आश्लिष्य वा पादरतां
पिनष्टु मामदर्शना-
न्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु
लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु
सएव नापरः ॥

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश
कामये
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी
त्वयि ॥ (श्रीशिक्षाष्टक
एक भागवत बड़
भागवत-शास्त्र
आर भागवत भक्त
भक्तिरस पात्र
दुइ भागवत द्वारा दिया
भक्तिरस
ताहार हृदये तार
प्रेमे हय वश ॥ (चै. च
ग्रंथरूपे भागवत
कृष्ण अवतार ॥ (चै. भा

मैंने कामक्रोधादि षड़रिपुओं के कितने ही दुष्ट आदेशों का कितने ही प्रकारों से पालन किया, किन्तु हाय ! मेरे प्रति उनकी करुणा अथवा लज्जा विरक्ति भी नहीं हुई । हे यदुपते ! तुम्हारी कृपा से अब मुझे ज्ञान हो गया है, इसलिये इन सबको दूर छोड़कर तुम्हारे अभय चरणों की शरण लेता हूँ, तुम मुझे अपना दास्य प्रदान करो ।

"धन जन नाहि मागो कविता सुन्दरी । शुद्धभक्ति कृष्ण मोरे देहो कृपा करी ।"
(चै० च०)

Scanned with CamScanner

श्रीराधाकुण्डस्थ श्रीश्रीचैतन्यशास्त्र मन्दिर से प्रकाशित कतिपय शुद्धभक्ति ग्रंथ—

बंगला प्रकाशन—

१. श्रीराधारससुधानिधिः
(अन्वयानुवाद एवं विस्तृत व्याख्या सह १२०)
२. श्रीस्तवावली १म खण्ड,(टीका अनुवाद एवं वि. व्या. १२०)
३. ,, द्वितीय खण्ड ,, ,, ८०)
४. श्रीविलापकुसुमांजलिः (अन्वयानुवाद एवं वि.व्या.सह ५०)
५. श्रीप्रेमभक्तिचन्द्रिका ८०)
६. श्रीगौरगोविन्दलीलामृत गुटिका ४०)
७. श्रीउत्कलिकावल्लरि (अन्वयानुवाद एवं वि. व्या.) ३०)
८. श्रीवृहद्भागवतामृत मर्मानुवाद (१म २य खण्ड) २२)
९. भक्तिकल्पलता (१म, २य एवं ३य खण्ड) १२) ३) ३)
१०. मञ्जरीस्वरूप-निरूपण १२)
१२. रसदर्शन (रसतत्व को दार्शनिक विचार-पद्धति) १०)
१३. श्रीशिक्षाष्टकम् १०)
१४. भक्तिरस-प्रसङ्ग १०)
१४ श्रीराधाकुण्ड की महिमा एवं ऐतिह्य ८)
१५. सचित्र भवकूप में जीव की गति (षष्ठ संस्करण) ८)
१६. परतत्त्व—साम्मुख्य ३)
१७. मञ्जरीभाव—साधनपद्धति ४)
१८. सङ्कल्प-कल्पद्रुम ३)

हिन्दी प्रकाशन—

१. श्रीराधारससुधानिधिः
(अन्वय—अनुवाद-विस्तृत-व्याख्या सह १००)
२. श्रीराधाकुंड की महिमा एवं इतिहास ८)
३. संसार—कूप में जीव की गति ८)

Scanned with CamScanner